

## Chapter तीन

### शुद्ध भक्ति-मय सेवा : हृदय-परिवर्तन

श्री-शुक उवाच

एवमेतन्निगदितं पृष्ठवान् यद्भवान् मम ।

नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; एतत्—यह सब; निगदितम्—उत्तरित; पृष्ठवान्—तुम्हारे पृष्ठे जाने पर; यत्—जो; भवान्—आपने; मम—मुझसे; नृणाम्—मानव का; यत्—जो; म्रियमाणानाम्—मरणासन्न; मनुष्येषु—मनुष्यों में; मनीषिणाम्—बुद्धिमान मनुष्यों के।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, आपने मुझसे मरणासन्न बुद्धिमान मनुष्य के कर्तव्य के विषय में जिस प्रकार जिज्ञासा की, उसी प्रकार मैंने आपको उत्तर दिया है।

तात्पर्य : सारे विश्व में मानव समाज में लाखों करोड़ों नर-नारी हैं और वे प्रायः सभी अल्पज्ञ हैं, क्योंकि उन्हें आत्मा के विषय में बहुत अल्प ज्ञान है। प्रायः सबों को जीवन की मिथ्या अव-धारणा है, क्योंकि वे अपनी पहचान स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर के रूप में करते हैं, जबकि वे ऐसे हैं नहीं। भले ही वे मानव समाज की नजरों में उच्च तथा निम्न पदों पर स्थित हों, किन्तु मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि जब तक वह अपने शरीर तथा मन से परे, अपने आत्मा के विषय में जिज्ञासा नहीं करता, तब तक मनुष्य-जीवन के उसके सारे कार्य नितान्त निष्फल हैं। इसलिए हजारों-हजार मनुष्यों में से कोई एक अपने आत्मा के विषय में जिज्ञासा करता है और वेदान्त-सूत्र, भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत जैसे शास्त्रों को पढ़ता है। किन्तु ऐसे शास्त्रों के पढ़ने तथा सुनने के बावजूद भी, जब तक वह स्वरूपसिद्ध गुरु के सम्पर्क में नहीं आता, तब तक वह आत्मा की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझ सकता। और ऐसे हजारों-लाखों व्यक्तियों में से कोई एक ऐसा निकलेगा जो वास्तव में भगवान् कृष्ण को जान सके। चैतन्य-चरितामृत (मध्य २०.१२२-१२३) में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण ने, अपनी अहैतुकी कृपावश, व्यासदेव का अवतार लेकर मानव समाज के बुद्धिमान वर्ग पठन-पाठन के लिए वैदिक साहित्य तैयार किया, क्योंकि यह वर्ग भगवान् से अपने असली सम्बन्ध को प्रायः पूरी तरह भूला हुआ है। ऐसा बुद्धिमान वर्ग भी भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध भूल सकता है। अतएव सम्पूर्ण

भक्तियोग भूले हुए सम्बन्ध को पुनः जागृत करने के लिए है। यह पुनःजागरण केवल मनुष्य-जीवन में सम्भव है, जो चौरासी लाख योनियों का चक्र पूरा होने पर ही मिलता है। बुद्धिमान वर्ग के मनुष्यों को इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। चूँकि सारे मनुष्य बुद्धिमान नहीं होते, अतएव मनुष्य-जीवन की महत्ता हमेशा ठीक से समझ में नहीं आती। यहाँ पर *मनीषिणाम्* अर्थात् बुद्धिमान का विशेष प्रयोग हुआ है। महाराज परीक्षित जैसे *मनीषिणाम्* को भगवान् कृष्ण के चरणकमल ग्रहण करने चाहिए तथा भगवान् के पवित्र नाम तथा उनकी लीलाओं के श्रवण, कीर्तन आदि में अपने को लगाना चाहिए, क्योंकि ये सभी *हरिकथामृत* हैं। यह कृत्य विशेष रूप से मरणासन्न व्यक्ति के लिए संस्तुत है।

ब्रह्म-वर्चस-कामस्तु यजेत ब्रह्मणः पतिम् ।  
 इन्द्रमिन्द्रिय-कामस्तु प्रजा-कामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥  
 देवीं मायां तु श्री-कामस्तेजस्कामो विभावसुम् ।  
 वसु-कामो वसून् रुद्रान् वीर्य-कामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥  
 अन्नाद्य-कामस्त्वदितिं स्वर्ग-कामोऽदितेः सुतान् ।  
 विश्वान्देवान् राज्य-कामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४ ॥  
 आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टि-काम इलां यजेत् ।  
 प्रतिष्ठा-कामः पुरुषो रोदसी लोक-मातरौ ॥ ५ ॥  
 रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्री-कामोऽप्सर उर्वशीम् ।  
 आधिपत्य-कामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥  
 यज्ञं यजेद् यशस्कामः कोश-कामः प्रचेतसम् ।  
 विद्या-कामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थं उमां सतीम् ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

ब्रह्म—परम; वर्चस—तेज; कामः तु—जो उनकी कामना करता है; यजेत—पूजे; ब्रह्मणः—वेदों के; पतिम्—स्वामी को;  
 इन्द्रम्—स्वर्ग के राजा को; इन्द्रिय-कामः तु—लेकिन जो प्रबल इन्द्रिय का इच्छुक है; प्रजा-कामः—सन्तान चाहनेवाला;  
 प्रजापतीन्—प्रजापतियों को; देवीम्—देवी को; मायाम्—संसार की स्वामिनी को; तु—भी; श्री-कामः—सौन्दर्य की कामना करनेवाला; तेजः—शक्ति; कामः—चाहनेवाला; विभावसुम्—अग्निदेव को; वसु-कामः—सम्पत्ति चाहनेवाला; वसून्—वसुओं को; रुद्रान्—शिवजी के रुद्र अंशों को; वीर्य-कामः—बलिष्ठ बनने का इच्छुक; अथ—इसीलिए; वीर्यवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अन्न-अद्य—अनाज की; कामः—कामना करनेवाला; तु—लेकिन; अदितिम्—देवताओं की माता अदिति को;  
 स्वर्ग—स्वर्ग की; कामः—अभिलाषा करनेवाला; अदितेः सुतान्—अदिति के पुत्रों को; विश्वान्—विश्वदेव को; देवान्—देवताओं को; राज्य-कामः—राज्य की लालसा रखनेवाले; साध्यान्—साध्यदेवों को; संसाधकः—इच्छा पूरी करनेवाला;  
 विशाम्—वणिक् वर्ग की; आयुः-कामः—दीर्घायु चाहनेवाला; अश्विनौ—अश्विनीकुमार नामक; देवौ—दोनों देवताओं को;  
 पुष्टि-कामः—सुगठित शरीर चाहनेवाला; इलाम्—पृथ्वी को; यजेत्—पूजे; प्रतिष्ठा-कामः—यश या पद में स्थिरता चाहनेवाला; पुरुषः—ऐसे व्यक्ति; रोदसी—अन्तरिक्ष; लोक-मातरौ—तथा पृथ्वी को; रूप—सौन्दर्य; अभिकामः—निश्चित रूप से कामना करनेवाला; गन्धर्वान्—गन्धर्वों को, जो गन्धर्व लोक के रहनेवाले हैं तथा गायन में अत्यन्त पटु होते हैं; स्त्री-कामः—अच्छी पत्नी चाहनेवाला; अप्सरः उर्वशीम्—स्वर्गलोक की अप्सराओं को; आधिपत्य-कामः—दूसरों पर शासन चलाने की

इच्छा रखनेवाला; सर्वेषाम्—सबों की; यजेत—पूजा करे; परमेष्ठिनम्—ब्रह्माण्ड के प्रमुख ब्रह्मा को; यज्ञम्—भगवान् को; यजेत्—पूजे; यशः-कामः—प्रसिद्ध होने का इच्छुक; कोश-कामः—अच्छी बैंक-बचत का इच्छुक; प्रचेतसम्—स्वर्ग के कोषाध्यक्ष वरुण को; विद्या-कामः तु—लेकिन जो विद्या का इच्छुक हो; गिरिशम्—हिमालय के स्वामी शिवजी को; दाम्पत्य-अर्थः—तथा दाम्पत्य प्रेम के लिए; उमाम् सतीम्—शिवजी की सती पत्नी को, जो उमा के नाम से विख्यात हैं।

जो व्यक्ति निर्विशेष ब्रह्मज्योति तेज में लीन होने की कामना करता है, उसे वेदों के स्वामी ( भगवान् ब्रह्मा या विद्वान् पुरोहित बृहस्पति ) की पूजा करनी चाहिए; जो प्रबल कामवासना का इच्छुक हो, उसे स्वर्ग के राजा इन्द्र की और जो अच्छी सन्तान का इच्छुक हो, उसे प्रजापतियों की पूजा करनी चाहिए। जो सौभाग्य का आकांक्षी हो, उसे भौतिक जगत की अधीक्षिका दुर्गादेवी की पूजा करनी चाहिए। जो अत्यन्त शक्तिशाली बनना चाहे, उसे अग्नि की और जो केवल धन की इच्छा करता हो, उसे वसुओं की पूजा करनी चाहिए। यदि कोई महान् वीर बनना चाहता है, तो उसे शिवजी के रुद्रावतारों की पूजा करनी चाहिए। जो प्रचुर अन्न की राशि चाहता हो, उसे अदिति की पूजा करनी चाहिए। जो स्वर्ग-लोक की कामना करे, उसे अदिति के पुत्रों की पूजा करनी चाहिए। जो व्यक्ति सांसारिक राज्य चाहता हो, उसे विश्वदेव की और जो जनता में लोकप्रियता का इच्छुक हो, उसे साध्यदेव की पूजा करनी चाहिए। जो दीर्घायु की कामना करता हो, उसे अश्विनीकुमारों की और जो पुष्ट शरीर चाहे, उसे पृथ्वी की पूजा करनी चाहिए। जो अपनी नौकरी ( पद ) के स्थायित्व की कामना करता हो, उसे क्षितिज तथा पृथ्वी दोनों की सम्मिलित पूजा करनी चाहिए। जो सुन्दर बनना चाहता हो, उसे गन्धर्व-लोक के निवासियों की और जो सुन्दर पत्नी चाहता हो, उसे अप्सराओं तथा स्वर्ग की उर्वशी अप्सराओं की पूजा करनी चाहिए। जो अन्यो पर शासन करना चाहता हो, उसे ब्रह्माण्ड के प्रमुख भगवान् ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए। जो स्थायी कीर्ति का इच्छुक हो, उसे भगवान् की तथा जो अच्छी बैंक-बचत चाहता हो, उसे वरुणदेव की पूजा करनी चाहिए। और यदि कोई अच्छा वैवाहिक सम्बन्ध चाहता है, तो उसे शिवजी की पत्नी, सती देवी उमा, की पूजा करनी चाहिए।

तात्पर्य : विभिन्न विषयों में सफलता के इच्छुक विभिन्न पुरुषों के लिए, पूजा की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इस भौतिक जगत की सीमा में रहनेवाला बद्धजीव प्रत्येक प्रकार की योग्य वस्तु में दक्ष नहीं हो सकता, किन्तु जैसाकि ऊपर बताया गया है, वह विशेष देवता की पूजा करके उस विशेष पदार्थ के

ऊपर प्रभूत प्रभाव डाल सकता है। शिवजी की पूजा करने से रावण, अत्यन्त शक्तिशाली बन गया था, वह शिवजी को प्रसन्न करने के लिए अपने शिरों को काटकर उन्हें अर्पित करता था। वह शिवजी की कृपा से तब तक इतना शक्तिशाली बनता गया कि सारे देवता उससे भयभीत रहने लगे, जब तक कि वह भगवान् श्रीरामचन्द्र को ललकार कर स्वयं नष्ट नहीं हो गया। दूसरे शब्दों में, ऐसे सारे व्यक्ति, जो कुछ या सारे भोग-विषयों की प्राप्ति करने में लगे रहते हैं, या स्थूल भौतिकतावादी व्यक्ति कुल मिलाकर अल्पज्ञ हैं, जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२०) में पुष्टि की गई है। उसमें कहा गया है कि जो सद्विवेक से विहीन हैं या जिनकी बुद्धि माया की भ्रामक शक्ति से हर ली गई है, वे जीवन में विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करके, या वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर भौतिक सभ्यता में उन्नति करके, जीवन के सारे भोगों को प्राप्त करना चाहते हैं। इस भौतिक जगत में जीवन की मुख्य समस्या जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का समाधान ढूँढना है। कोई अपने जन्म-अधिकार को बदलना नहीं चाहता, कोई मरना नहीं चाहता, कोई वृद्ध या अशक्त नहीं होना चाहता और कोई रोगग्रस्त नहीं होना चाहता। किन्तु ये समस्याएँ, न तो किसी देवता के अनुग्रह से हल हो पाती हैं, न तथाकथित भौतिक विज्ञान की उन्नति से। *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में ऐसे अल्पज्ञ व्यक्तियों का वर्णन सभी प्रकार के सद्विचारों से विहीन व्यक्तियों के रूप में हुआ है। शुकदेव गोस्वामी ने बताया कि जीवों की ८४,००,००० योनियों में से मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ एवं मूल्यवान है और ऐसे व्यक्तियों में भी वे लोग और भी दुर्लभ हैं, जो भौतिक समस्याओं के प्रति सचेष्ट हों। इनमें से भी ऐसे लोग अत्यन्त दुर्लभ हैं, जो *श्रीमद्भागवत* के महत्त्व से अवगत हों, जिसमें भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों की कथाएँ मिलती हैं। मृत्यु सबके लिए अपरिहार्य है, चाहे वह बुद्धिमान हो या मूर्ख। लेकिन शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को *मनीषी* कहकर सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ है कि वे अत्यधिक विकसित मन वाले पुरुष थे, क्योंकि उन्होंने मृत्यु निकट आने पर सारे भौतिक भोग छोड़ दिये थे और शुकदेव गोस्वामी जैसे योग्य व्यक्ति से भगवान् की कथाएँ सुन करके, उनके चरणकमलों में आत्म-समर्पण कर दिया था। लेकिन प्रयत्नशील पुरुषों द्वारा भौतिक भोग के लिए की जानेवाली आकांक्षाओं की भर्त्सना की गई है। ऐसी आकांक्षाएँ पतित मानव समाज के लिए नशे के तुल्य हैं। बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए कि इन

आकांक्षाओं से बचें और बजाय इसके भगवद्धाम वापस जाकर स्थायी जीवन को खोजें।

**धर्मार्थ उत्तम-श्लोकं तन्तुः तन्वन् पितृन् यजेत् ।**

**रक्षा-कामः पुण्य-जनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥**

**शब्दार्थ**

धर्म-अर्थः—आध्यात्मिक विकास के लिए; उत्तम-श्लोकम्—परमेश्वर या उनके प्रति आसक्त व्यक्तियों को; तन्तुः—सन्तान के लिए; तन्वन्—तथा उनकी सुरक्षा के लिए; पितृन्—पितृलोक के वासियों को; यजेत्—पूजे; रक्षा-कामः—सुरक्षा चाहनेवाला; पुण्य-जनान्—पवित्र व्यक्तियों को; ओजः-कामः—शक्ति चाहनेवाला; मरुत्-गणान्—देवताओं को।

ज्ञान के आध्यात्मिक विकास के लिए मनुष्य को चाहिए कि भगवान् विष्णु या उनके भक्त की पूजा करे और वंश की रक्षा के लिए तथा कुल की उन्नति के लिए उसे विभिन्न देवताओं की पूजा करनी चाहिए।

**तात्पर्य :** धर्म-पथ आध्यात्मिक विकास के पथ पर उन्नति करने, अन्ततोगत्वा भगवान् विष्णु के साथ उनके निर्विशेष तेज, उनके अन्तर्यामी परमात्मा-स्वरूप तथा अन्ततोगत्वा ज्ञान में आध्यात्मिक विकास के द्वारा उनके साकार स्वरूप के साथ नित्य सम्बन्ध को पुनःजागरित करने की ओर ले जाता है। जो व्यक्ति अच्छा वंश स्थापित करना चाहता है और क्षणिक शारीरिक सम्बन्धों की उन्नति से सुखी रहना चाहता है, उसे पितरों तथा अन्य पवित्र लोकों के देवताओं की शरण में जाना चाहिए। ऐसे विभिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न श्रेणियों के पूजक अन्ततोगत्वा उन-उन देवताओं के लोकों में पहुँच ही सकेंगे, किन्तु जो ब्रह्मज्योति में स्थित वैकुण्ठ लोकों तक पहुँच जाता है, उसे सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है।

**राज्य-कामो मनून् देवान् निर्रहति त्वभिचरन् यजेत् ।**

**काम-कामो यजेत् सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥**

**शब्दार्थ**

राज्य-कामः—राज्य की इच्छा करनेवाला; मनून्—ईश्वर के अर्धअवतार मनुओं को; देवान्—देवताओं को; निर्रहतिम्—असुरों को; तु—लेकिन; अभिचरन्—शत्रु पर विजय पाने की इच्छा रखते हुए; यजेत्—पूजे; काम-कामः—इन्द्रिय तृप्ति का इच्छुक; यजेत्—पूजा करे; सोमम्—चन्द्र देवता की; अकामः—निष्काम; पुरुषम्—परमेश्वर की; परम्—परम।

जो व्यक्ति राज्य-सत्ता पाने का इच्छुक हो, उसे मनुओं की पूजा करनी चाहिए। जो व्यक्ति शत्रुओं पर विजय पाने का इच्छुक हो, उसे असुरों की और जो इन्द्रियतृप्ति चाहता हो, उसे

चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए। किन्तु जो किसी प्रकार के भोग की इच्छा नहीं करता, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

**तात्पर्य :** मुक्तात्माओं के लिए ऊपर गिनाये गये सारे भोग पूरी तरह से अर्थहीन हैं। जो लोग बहिरंगा शक्ति के गुणों द्वारा बद्ध हैं, वे ही विभिन्न प्रकार के भौतिक भोगों द्वारा मोहित होते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, योगी की भौतिक भोग को पूरा करने की कोई इच्छा नहीं होती जबकि भौतिकतावादी समस्त प्रकार की इच्छाओं से युक्त रहता है। भगवान् ने घोषित किया है कि जो भौतिकतावादी, भौतिक भोग चाहते हैं और उनके लिए विभिन्न देवताओं से कृपा-याचना करते हैं, जैसाकि ऊपर कहा गया है, वे अपने विवेक में नहीं रहते हैं और मूर्ख सिद्ध होते हैं। अतएव मनुष्य को कभी किसी तरह के भौतिक भोग की इच्छा नहीं करनी चाहिए। उसे तो पूर्ण-पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करने के लिए सजक रहना चाहिए। ऐसे विमूढ़ व्यक्तियों के नेता उनसे बढ़कर विमूढ़ होते हैं, क्योंकि वे खुल कर यह प्रचार करते हैं कि मनुष्य किसी भी देवता की पूजा करके एक सा फल प्राप्त कर सकता है। ऐसा प्रचार न केवल *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं के विपरीत है, अपितु मूर्खतापूर्ण भी है। यह उसी तरह है, जैसे किसी भी यात्री-टिकट के बल पर किसी भी गन्तव्य तक पहुँचने का अधिकार जताना। यदि कोई बड़ौदा का टिकट खरीदे तो वह उससे बम्बई या दिल्ली नहीं जा सकता। यहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि विभिन्न इच्छाओं से युक्त व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से पूजा करनी चाहिए, लेकिन जिसे कोई भोग-वासना नहीं है, उसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। यह पूजा प्रक्रिया भक्ति-मय सेवा कहलाती है। शुद्ध भक्ति का अर्थ होता है कि किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा के बिना, जिसमें सकाम कर्म तथा ज्ञान की इच्छा भी सम्मिलित है, भगवान् की सेवा करना। भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य चाहे तो परमेश्वर की पूजा कर सकता है, किन्तु ऐसी पूजा से प्राप्त होनेवाला फल भिन्न होता है, जिसकी व्याख्या अगले श्लोक में की जायेगी। सामान्यतया भगवान् किसी की इन्द्रियभोग की कामनाओं को पूरा नहीं करते, किन्तु वे अपने पूजकों को ऐसा वरदान देते हैं जिससे अन्त में वे भौतिक भोग की इच्छा न करने के बिन्दु पर पहुँच जाते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि मनुष्य को भौतिक भोग की इच्छाएँ कम कर देनी चाहिए और इसके लिए उसे पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करनी चाहिए जिन्हें यहाँ परम् या किसी भी भौतिक वस्तु के परे कहा गया है। श्रीपाद शंकराचार्य ने भी कहा है— *नारायणः परोऽव्यक्तात्*—परमेश्वर भौतिक चक्र से परे है।

**अकामः सर्व-कामो वा मोक्ष-काम उदार-धीः ।**

**तीव्रेण भक्ति-योगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥**

**शब्दार्थ**

अकामः—जिसने भौतिक इच्छाओं को पार कर लिया है; सर्व-कामः—जिसमें समग्र भौतिक इच्छाएँ हैं; वा—अथवा; मोक्ष-कामः—मुक्ति की इच्छा रखनेवाला; उदार-धीः—व्यापक बुद्धि वाला; तीव्रेण—तीव्र शक्ति के साथ; भक्ति-योगेन—भगवद्भक्ति द्वारा; यजेत—पूजे; पुरुषम्—भगवान् को; परम्—परम पूर्ण।

जिस व्यक्ति की बुद्धि व्यापक है, वह चाहे सकाम हो या निष्काम अथवा मुक्ति का इच्छुक हो, उसे चाहिए कि सभी प्रकार से परमपूर्ण भगवान् की पूजा करे।

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम अर्थात् परम पुरुष कहा गया है। वे ही हैं, जो निर्विशेषवादियों को ब्रह्मज्योति में लीन करके उन्हें मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। यह ब्रह्मज्योति भगवान् से पृथक् नहीं है, जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य किरणें सूर्यगोलक से पृथक् नहीं होती हैं। अतएव जो परम निर्विशेष ब्रह्मज्योति में लीन होना चाहता है, उसे भी भक्तियोग द्वारा भगवान् की पूजा करनी चाहिए जैसी कि यहाँ पर संस्तुति की गई है। यहाँ पर सर्वसिद्धि प्राप्ति के साधन, भक्तियोग, पर विशेष बल दिया गया है। पिछले अध्यायों में बताया गया है कि कर्मयोग तथा ज्ञानयोग दोनों का चरम लक्ष्य भक्तियोग है, उसी तरह इस अध्याय में यह घोषणा की गई है कि विभिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न प्रकार से पूजा करने का चरम लक्ष्य भक्तियोग है। आत्म-साक्षात्कार का परम साधन होने के कारण इस प्रकार यहाँ पर भक्तियोग की संस्तुति की गई है। चाहे कोई भौतिक भोग की या भवबन्धन से मुक्ति की आकांक्षा रखता हो, प्रत्येक व्यक्ति को गम्भीरतापूर्वक भक्तियोग अपनाना चाहिए।

**अकामः** वह है, जिसे कोई भौतिक इच्छा न हो। **पुरुषं पूर्णम्** अर्थात् परम पूर्ण का अंश होने के कारण परमेश्वर की सेवा करना जीव का स्वाभाविक कार्य है, जिस तरह कि शरीर के अंग पूर्ण शरीर की सेवा करने के निमित्त होते हैं। अतएव **अकामः** का अर्थ पत्थर की तरह निष्क्रिय या जड़ होना नहीं है, अपितु अपनी वास्तविक स्थिति के प्रति सचेष्ट रहना है और इस तरह से केवल परमेश्वर से तुष्टि की

कामना करना है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ सन्दर्भ में इस अकाम-भाव का *भजनीय परम-पुरुष सुख-मात्र-स्वसुखत्वम्* कहकर व्याख्या की है। इसका अर्थ है कि परमेश्वर की प्रसन्नता का अनुभव करके मनुष्य प्रसन्न होता है। जीव की यह अन्तश्चेतना भौतिक जगत में जीव की बद्ध अवस्था में भी कभी-कभी प्रकट होती है और यही अन्तश्चेतना अल्पज्ञ व्यक्तियों के अविकसित मनों द्वारा परोपकार, समाजवाद, साम्यवाद इत्यादि में अभिव्यक्त होती है। सांसारिक क्षेत्र में समाज, समुदाय, परिवार, देश या मानवता के रूप में अन्यों की भलाई करने का दिखावा उसी मूल भावना की आंशिक अभिव्यक्ति होता है, जिसमें शुद्ध जीव परमेश्वर की प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता समझता है। ऐसी उत्कृष्ट भावनाएँ ब्रजभूमि की गोपियों द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिए प्रकट की गई थीं। गोपियों ने, किसी प्रतिफल के बिना, भगवान् से प्रेम किया और यह *अकाम* भावना की पूर्ण अभिव्यञ्जना है। *काम* मनो-भाव अर्थात् अपनी तुष्टि के भाव की पूर्ण अभिव्यञ्जना भौतिक जगत में होती है, जबकि *अकामः* भाव पूर्ण रूप से आध्यात्मिक जगत में प्रकट होता है।

भगवान् में तदाकार होने का भाव या ब्रह्मज्योति में लीन होने का भाव भी *काम* भाव का प्रदर्शन माना जा सकता है यदि ये भाव, भौतिक कष्टों से मुक्त होने के लिए हों। इसीलिए, भक्त कभी भी मोक्ष इसलिए नहीं चाहता कि वह जीवन के कष्टों से मुक्त हो जाय। ऐसे मोक्ष के बिना भी शुद्ध भक्त सदैव भगवान् की तुष्टि की कामना करता है। अर्जुन ने *काम* भाव से प्रेरित होकर कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में लड़ने से इनकार कर दिया था, क्योंकि वह अपनी तुष्टि के लिए अपने सम्बन्धियों को बचाना चाह रहा था। किन्तु शुद्ध भक्त होने के कारण भगवान् के आदेश पर वह युद्ध करने के लिए तैयार हो गया, क्योंकि उसे ज्ञान हो चुका था और उसने अनुभव किया कि अपनी तुष्टि की बलि देकर भगवान् की तुष्टि करना उसका परम कर्तव्य है। इस तरह वह *अकाम* हो गया। यह पूर्णजीव की पूर्णावस्था (सिद्धावस्था) है।

*उदार-धीः* का अर्थ है व्यापक दृष्टिवाला या उदार-चेता। जो लोग भौतिक भोग की कामना करते हैं, वे छोटे-मोटे देवताओं को पूजते हैं। *भगवद्गीता* (७.२०) में ऐसी बुद्धि को *हतज्ञान* अर्थात् ऐसे व्यक्ति की बुद्धि जो संज्ञाशून्य हो चुका हो, कह कर भर्त्सना की गई है। कोई भी व्यक्ति परमेश्वर की



स्वीकृति लिए बिना देवताओं से कोई भी फल प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए व्यापक दृष्टिवाला व्यक्ति यह देख सकता है कि भौतिक लाभों के लिए भी अन्तिम प्राधिकारी (सत्ता) भगवान् ही हैं। ऐसी परिस्थिति में, व्यापक दृष्टिवाले व्यक्ति को चाहिए कि वह सीधे भगवान् की पूजा करे, भले ही वह भौतिक भोग या मुक्ति की कामना क्यों न कर रहा हो। चाहे कोई *अकाम* हो या *सकाम* या *मोक्षकाम*, हर एक को तत्परता से भगवान् की पूजा करनी चाहिए। इसका अर्थ यह होता है कि कर्म तथा ज्ञान के किसी प्रकार के मिश्रण के बिना ही, भक्तियोग पूरी तरह लागू किया जा सकता है। जैसे अमिश्रित सूर्य की किरण अत्यन्त तीव्र होती है। इसी तरह श्रवण, कीर्तन इत्यादि का अमिश्रित भक्तियोग आन्तरिक उद्देश्य से निरपेक्ष होकर सबों के द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है।

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ।

भगवत्यचलो भावो यद् भागवत-सङ्गतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एतावान्—ये भिन्न पूजक; एव—निश्चय ही; यजताम्—पूजा करते हुए; इह—इस जीवन में; निःश्रेयस—सर्वोच्च वर; उदयः—विकास; भगवति—परमेश्वर पर; अचलः—निश्चल; भावः—आकर्षण; यत्—जो; भागवत—भगवान् के शुद्ध भक्त की; सङ्गतः—संगति से।

अनेक देवताओं की पूजा करनेवाले विविध प्रकार के लोग, भगवान् के शुद्ध भक्त की संगति से ही सर्वोच्च सिद्धिदायक वर प्राप्त कर सकते हैं, जो भगवान् पर अविचल आकर्षण के रूप में होता है।

**तात्पर्य :** इस भौतिक सृष्टि में प्रथम देवता ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक विभिन्न योनियों के सारे जीव, प्रकृति के नियम या भगवान् की बहिरंगा शक्ति के अधीन हैं। जीव अपनी शुद्ध अवस्था में जानता रहता है कि वह भगवान् का अंश है, किन्तु जब जीव, भौतिक शक्ति पर प्रभुत्व जताने की इच्छा के कारण, भौतिक जगत में आ गिरता है, तो वह प्रकृति के तीन गुणों द्वारा बद्ध हो जाता है और वह अधिकाधिक लाभ के लिए जीवन-संघर्ष करता है। यह जीवन-संघर्ष, भौतिक भोग के वशीभूत होकर, मायाजाल के पीछे भागने के सदृश है। भौतिक भोग की सारी योजनाएँ, चाहे वे विभिन्न देवताओं की पूजा द्वारा सम्पन्न हों जैसाकि इसी अध्याय के पिछले श्लोकों में बताया गया है अथवा ईश्वर या देवता की सहायता के बिना वैज्ञानिक ज्ञान की आधुनीकृत प्रगति हो, मात्र भ्रम हैं, क्योंकि

सुख की इन समस्त योजनाओं के बावजूद बद्धजीव भौतिक सृष्टि के सम्पर्क में रहकर जीवन की समस्याओं को—जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग को—कभी हल नहीं कर सकता। विश्व का इतिहास ऐसे योजना-निर्माताओं से भरा पड़ा है। अनेक राजा-महाराज आते-जाते रहते हैं, लेकिन उनकी कहानी ही शेष रह जाती है और जीवन की मुख्य समस्या इन योजना-निर्माताओं के बावजूद जैसी की तैसी बनी रहती है।

वास्तव में यह मनुष्य जीवन, जीवन की समस्याओं का हल ढूँढ़ने के लिए प्राप्त हुआ है। किन्तु विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करके, पूजा की विविध विधियों से या ईश्वर अथवा देवताओं की सहायता लिए बिना ज्ञान के तथाकथित वैज्ञानिक विकास से, मनुष्य इन समस्याओं को हल नहीं कर सकता। ईश्वर या देवता की परवाह न करनेवाले निपट भौतिकतावादियों के अतिरिक्त, सारे वेद विभिन्न लाभों के लिए विभिन्न देवताओं की पूजा करने की संस्तुति करते हैं। अतएव ये देवता न तो मिथ्या हैं, न काल्पनिक। देवता हमारी ही तरह वास्तविक हैं, लेकिन ब्रह्माण्डीय-सरकार के विभिन्न विभागों का प्रबन्ध करने में वे भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा में लगे रहने से अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं। *भगवद्गीता* से इसकी पुष्टि होती है और उसमें परमदेव ब्रह्मा समेत देवताओं के विभिन्न लोकों का उल्लेख है। निपट भौतिकतावादी लोग ईश्वर या देवताओं के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। न ही वे यह विश्वास करते हैं कि भिन्न-भिन्न लोकों में विभिन्न देवताओं का आधिपत्य है। वे निकटतम दैवी पिंड (उपग्रह) चन्द्रलोक तक पहुँचने में काफी हंगामा खड़ा कर रहे हैं, लेकिन इतने यान्त्रिक शोध के बाद भी वे चन्द्रमा के विषय में बहुत कम सूचना एकत्र कर पाये हैं और चन्द्रमा में भूखण्ड बेचने के झूठे विज्ञापन के बावजूद गर्वित विज्ञानी या निपट भौतिकतावादी वहाँ रह नहीं सकते। अन्य लोकों की तो बातें करना व्यर्थ है, क्योंकि वे उनकी गणना भी नहीं कर सकते। किन्तु वेदों के अनुयायी भिन्न विधि से ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे वैदिक साहित्य के कथनों को प्रमाण मानते हैं, जैसाकि हम प्रथम स्कंध में कह चुके हैं। अतएव उन्हें ईश्वर तथा देवताओं के विषय में और उसी के साथ-साथ भौतिक जगत की परिधि में स्थित भौतिक आकाश की सीमा से परे विभिन्न आवासीय लोकों का पूरा-पूरा एवं संतोषजनक ज्ञान होता है। जिस सर्वाधिक प्रामाणिक साहित्य को शंकर, रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी,

निम्बार्क तथा चैतन्य जैसे भारतीय आचार्यों ने स्वीकार किया है और जिसका अध्ययन सभी महत्त्वपूर्ण महापुरुषों ने किया है, वह *भगवद्गीता* है, जिसमें देवताओं की पूजा तथा उनके अपने-अपने आवासीय लोकों का उल्लेख है। *भगवद्गीता* (९.२५) पुष्टि करती है—

*यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः ।*

*भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥*

“देवताओं के उपासक देवताओं के लोकों को जाते हैं और पितरों के पूजक पितृलोक को जाते हैं। निपट भौतिकतावादी भिन्न-भिन्न भौतिक लोक में रह जाते हैं, किन्तु भगवद्भक्त भगवान् के धाम पहुँच जाते हैं।”

*भगवद्गीता* से हमें यह भी जानकारी मिलती है कि इस जगत के सारे लोक, जिनमें ब्रह्मलोक भी सम्मिलित है, अस्थायी रूप से स्थित होते हैं और कुछ काल के बाद उनका विनाश हो जाता है। अतएव देवता तथा उनके अनुयायी भी प्रलय के समय विनष्ट हो जाते हैं, किन्तु जो भगवद्धाम पहुँच जाता है, वह शाश्वत जीवन का लाभ भोगता है। यह वैदिक साहित्य का मत है। देवताओं के उपासकों को नास्तिकों की तुलना में केवल एक लाभ है कि वे वैदिक निर्णय से आश्वस्त रहते हैं जिससे वे भगवद्भक्तों की संगति में रहकर परमेश्वर की पूजा के लाभ की जानकारी प्राप्त करते हैं। किन्तु निपट भौतिकतावादी को वैदिक निर्णय में कोई श्रद्धा नहीं होती, अतएव वह सदैव अपूर्ण प्रयोगात्मक ज्ञान या तथाकथित भौतिक ज्ञान के आधार पर झूठे विचार को प्राप्त होता है, जो कभी दिव्य ज्ञान को नहीं पा सकता।

अतएव जब तक निपट भौतिकतावादी या क्षणभंगुर देवताओं के उपासक किसी भगवद्भक्त के सम्पर्क में नहीं आ जाते तब तक उनके सारे प्रयास व्यर्थ जाते हैं। केवल दैवी पुरुषों, या भगवद्भक्तों के अनुग्रह से ही मनुष्य शुद्ध भक्ति प्राप्त कर सकता है और वही मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है। केवल शुद्ध भक्त ही उसे उन्नतिशील जीवन का सही मार्ग दिखला सकता है। अन्यथा ईश्वर या देवताओं के विषय में कोई सूचना न होना तथा क्षणिक भोग की खोज में देवताओं की पूजा में संलग्न जीवन—ये दोनों ही भौतिकतावादी जीवन-शैलियाँ मृग-मरीचिका के विभिन्न पहलू हैं। इनकी सुन्दर व्याख्या

भगवद्गीता में भी हुई है, लेकिन उसे भक्तों की संगति में ही समझा जा सकता है, राजनीतिज्ञों या शुष्क ज्ञानियों की विवेचनाओं से नहीं।

ज्ञानं यदाप्रतिनिवृत्त-गुणोर्मि-चक्र-

मात्म-प्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।

कैवल्य-सम्मत-पथस्त्वथ भक्ति-योगः

को निर्वृतो हरि-कथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—ज्ञान; यत्—जो; आ—की सीमा तक; प्रतिनिवृत्त—पूर्णतया निवृत्त; गुण-ऊर्मि—भौतिक गुणों की तरंगें; चक्रम्—भँवर; आत्म-प्रसादः—आत्म-संतोष; उत—और भी; यत्र—जहाँ; गुणेषु—प्रकृति के गुणों में; असङ्गः—अनासक्ति; कैवल्य—दिव्य; सम्मत—स्वीकृत; पथः—पथ, रास्ता; तु—लेकिन; अथ—अतएव; भक्ति-योगः—भक्ति; कः—कौन; निर्वृतः—लीन; हरि-कथासु—भगवान् की दिव्य कथाओं में; रतिम्—आकर्षण; न—नहीं; कुर्यात्—करेंगे।

भगवान् हरि विषयक दिव्य ज्ञान वह ज्ञान है, जिससे भौतिक गुणों की तरंगें तथा भँवरें पूरी तरह थम जाती हैं। ऐसा ज्ञान भौतिक आसक्ति से रहित होने के कारण आत्मतुष्टि प्रदान करनेवाला है और दिव्य होने के कारण महापुरुषों द्वारा मान्य है। तो भला ऐसा कौन है, जो इससे आकृष्ट नहीं होगा?

तात्पर्य : भगवद्गीता (१०.९) के अनुसार, शुद्ध भक्त के लक्षण अत्यन्त अद्भुत हैं। शुद्ध भक्त अपने सभी कार्यों को सदा भगवान् की सेवा में लगाता है। इस प्रकार शुद्ध भक्त आह्लाद की भावनाओं का परस्पर विनिमय और दिव्य आनन्द का आस्वादन करते हैं। यदि किसी प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में उचित ढंग से साधना की जाय तो साधन-अवस्था में भी यह दिव्य आनन्द अनुभव किया जाता है। परिपक्व अवस्था में इस विकसित दिव्य भाव की परिणति भगवान् के साथ विशेष सम्बन्ध की अनुभूति में होती है, जिस के द्वारा जीवात्मा का भौतिक स्वभाव बना होता है (भगवान् के साथ माधुर्य प्रेम तक, जो सर्वोच्च दिव्य आनन्द माना गया है)। इसलिए ईश-साक्षात्कार का एकमात्र साधन होने के कारण भक्तियोग कैवल्य कहलाता है। इस सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी एक वैदिक कथन उद्धृत करते हैं (एको नारायणो देवः परावराणां परम आस्ते कैवल्य-संज्ञितः) और यह प्रतिपादित करते हैं कि भगवान् नारायण ही कैवल्य हैं और जिस साधन से मनुष्य भगवान् तक पहुँचता है, वह कैवल्यपन्था अर्थात् भगवान तक पहुँचने का एकमात्र साधन कहा जाता है। कैवल्यपन्था भगवान्-सम्बन्धी कथाओं के

श्रवण से प्रारम्भ होता है और ऐसी हरिकथा सुनने का स्वाभाविक परिणाम दिव्य ज्ञान का लाभ है, जिससे संसारी कथाओं से विरक्ति उत्पन्न होती है और विषयों के लिए भक्त में कोई रुचि नहीं रह जाती। भक्त के लिए सारे कार्यकलाप, चाहे वे सामाजिक हों या राजनीतिक, अनाकर्षक प्रतीत होते हैं और परिपक्व अवस्था में ऐसे भक्त को अपने शरीर तक से अरुचि हो जाती है, शारीरिक सम्बन्धियों की बात तो उठती ही नहीं। ऐसी दशा में वह भौतिक गुणों की तरंगों से विचलित नहीं होता। प्रकृति के विभिन्न गुण हैं और जिन कार्यों में सामान्य व्यक्ति अत्यधिक रुचि लेता है या भाग लेता है, वे भक्त के लिए अनाकर्षक होते हैं। यहाँ पर इस अवस्था को *प्रतिनिवृत्त-गुणोर्मि* कहा गया है और यह *आत्म-प्रसाद* अर्थात् किसी प्रकार के भौतिक सम्बन्ध के बिना आत्मतुष्टि द्वारा सम्भव है। प्रथम कोटि का भगवद्-भक्त (*महाभागवत*) भक्ति द्वारा इस अवस्था को प्राप्त होता है, किन्तु अपनी महानता के बावजूद, वह भगवान् की तुष्टि के लिए भगवान् की महिमा का उपदेशक बन सकता है और वह इसी भक्ति में अपने सांसारिक स्वार्थ तक को लगा देता है, जिससे नवदीक्षित भक्तों को अपने सांसारिक स्वार्थों को दिव्य आनन्द में परिणत करने का अवसर मिल सके। श्रील रूप गोस्वामी ने शुद्ध भक्त के इस कार्य को *निर्बन्धः कृष्ण-सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते* कहा है। यदि सांसारिक कार्यों को भगवद्भक्ति से जोड़ दिया जाय, तो वे भी दिव्य या प्रमाणित कैवल्य कार्य बन जाते हैं।

शौनक उवाच

इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ।

किमन्यत्पृष्टवान् भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

शौनकः उवाच—शौनक ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिव्याहृतम्—जो कुछ कहा गया; राजा—राजा ने; निशम्य—सुनकर; भरत-ऋषभः—महाराज परीक्षित; किम्—क्या; अन्यत्—अधिक; पृष्टवान्—पूछा; भूयः—पुनः; वैयासकिम्—व्यास के पुत्र से; ऋषिम्—दक्ष; कविम्—काव्यमय।

शौनक ने कहा : व्यास-पुत्र श्रील शुकदेव गोस्वामी अत्यन्त विद्वान ऋषि थे और बातों को काव्यमय ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम थे। अतएव जो कुछ उन्होंने कहा, उसे सुनने के बाद महाराज परीक्षित ने उनसे और क्या पूछा ?

तात्पर्य : भगवद्भक्त में सारे दैवीगुण स्वतः विकसित होते हैं। इन गुणों में से कुछ महत्त्वपूर्ण गुण

इस प्रकार हैं—वह दयालु, शान्त, सत्यवादी, समदर्शी, त्रुटिरहित, उदार, मृदु, स्वच्छ, अनासक्त, सर्व शुभैषी, सन्तुष्ट, कृष्ण का शरणागत, लालसा-रहित, सरल, स्थिर, आत्माराम, नियमित आहार करनेवाला, ज्ञानी, शिष्ट, निरभिमान, गम्भीर, सहानुभूतिशील, मैत्री भाववाला, कवि-हृदय, दक्ष होता है तथा मौन रहता है। भक्त के इन छब्बीस गुणों में, जिनका वर्णन कृष्णदास कविराज ने *चैतन्य-चरितामृत* में किया है, कवि-हृदय का विशेष उल्लेख शुकदेव गोस्वामी के लिए हुआ है। उन्होंने *श्रीमद्भागवत* को सुनकर जिस तरह प्रस्तुत किया, वह उनकी कवित्व-शक्ति का परिचायक है। वे स्वरूप-सिद्ध विद्वान ऋषि थे। दूसरे शब्दों में, वे ऋषियों में कवि थे।

एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ।

कथा हरि-कथोदकाः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; शुश्रूषताम्—सुनने के लिए उत्सुक रहनेवालों का; विद्वन्—हे विद्वान; सूत—सूत गोस्वामी; नः—हम सबों को; अर्हसि—आप कर सकते हैं; भाषितुम्—समझाने के लिए; कथाः—कथाएँ; हरि-कथा-उदकाः—भगवत्कथा में प्रतिफलित हो; सताम्—भक्तों का; स्युः—हों; सदसि—सभा में; ध्रुवम्—निश्चय ही।

हे विद्वान सूत गोस्वामी, आप हम सबों को ऐसी कथाएँ समझाते रहें, क्योंकि हम सुनने को उत्सुक हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसी कथाएँ, जिनसे भगवान् हरि के विषय में विचार-विमर्श हो सके, भक्तों की सभा में अवश्य ही कही-सुनी जाँय।

तात्पर्य : जैसाकि हम रूप गोस्वामी कृत *भक्ति-रसामृत-सिन्धु* से पहले उद्धृत कर चुके हैं, यदि सांसारिक वस्तुओं को भी भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा से जोड़ दें, तो वे दिव्य बन जाती हैं। उदाहरणार्थ, *रामायण* तथा *महाभारत* जैसे महाकाव्य भी जो कि विशेष रूप से कम बुद्धिमान श्रेणी के लिए (स्त्रियों, शूद्रों तथा द्विजबन्धुओं के लिए) संस्तुत किये जाते हैं, वैदिक साहित्य माने जाते हैं, क्योंकि उनका संकलन भगवान् के कार्यकलापों के सम्बन्ध में किया गया है। *महाभारत* को पाँचवाँ वेद स्वीकार किया जाता है। अन्य चार विभाग हैं—*साम*, *यजु*, *ऋग्वेद* तथा *अथर्व*। अल्पज्ञानी लोग *महाभारत* को वेदों का अंग (वेदांग) नहीं मानते, लेकिन महर्षि तथा आचार्य इसे पाँचवाँ वेद मानते हैं। *भगवद्गीता* भी *महाभारत* का एक अंश है और यह अल्पज्ञ लोगों के लिए भगवान् के उपदेशों से परिपूर्ण है। कुछ अल्पज्ञ यह कहते हैं कि *भगवद्गीता* गृहस्थों के लिए नहीं है, लेकिन ऐसे मूर्ख यह भूल जाते हैं कि

इसी *भगवद्गीता* का उपदेश अर्जुन को दिया गया जो गृहस्थ था और भगवान् स्वयं भी गृहस्थ की भूमिका में थे। अतएव, यद्यपि *भगवद्गीता* में वैदिक विद्या का उच्च दर्शन पाया जाता है, तो भी यह दिव्य विज्ञान के नौसिखियों के लिए है और *श्रीमद्भागवत* स्नातकों तथा उत्तर-स्नातकों के लिए है। अतएव *महाभारत*, पुराण तथा अन्य ऐसे ही ग्रंथ जो भगवान् की लीलाओं से ओतप्रोत हैं, सभी दिव्य ग्रंथ हैं और उनकी व्याख्या महान् भक्तों के समाज में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक की जानी चाहिए।

कठिनाई तो यह है कि जब ऐसा साहित्य व्यावसायिक व्यक्तियों द्वारा व्याख्यायित होता है, तो यह इतिहास या महाकाव्यों की तरह संसारी साहित्य लगता है, क्योंकि इसमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य तथा आँकड़े रहते हैं। इसीलिए यह कहा गया है कि ऐसे साहित्य की व्याख्या भक्तों के समाज में की जाय। जब तक ऐसे ग्रन्थों की व्याख्या भक्तों द्वारा नहीं की जाती, तब तक उच्च श्रेणी के लोग ऐसे साहित्य का रसास्वाद नहीं कर सकते। अतएव निष्कर्ष यह निकला कि अन्ततोगत्वा भगवान् निर्विशेष नहीं हैं। वे परम पुरुष हैं और उनके कार्यकलाप विविध हैं। वे समस्त जीवों के पथ-प्रदर्शक हैं और पतितात्माओं के उद्धार हेतु अपनी निजी शक्ति तथा इच्छा से अवतरित होते हैं। इस तरह वे एक सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक नेता की तरह भूमिका निभाते हैं। चूँकि ऐसी भूमिकाएँ अन्ततः भगवान् की कथाओं की चर्चा में समाप्त होती हैं, अतएव ऐसी सारी प्रारम्भिक कथाएँ भी दिव्य हैं। मानव समाज के नागरिक कर्तव्यों के अध्यात्मीकरण का यही उपाय है। लोगों में इतिहास तथा अन्य संसारी साहित्य यथा कहानी, उपन्यास, नाटक, पत्रिका, समाचारपत्र पढ़ने की प्रवृत्ति होती है, अतएव उन्हें भगवान् की सेवा के साथ क्यों न जोड़ लिया जाय जिससे वे सभी भक्तों द्वारा आस्वादीय कथाएँ बन जाँय? भगवान् निर्विशेष हैं, उनमें कोई क्रियाशीलता नहीं होती, वे पत्थर की तरह जड़ हैं, एवं उनके न कोई नाम हैं, न रूप—इस तरह के प्रचार ने लोगों को ईश्वरविहीन, श्रद्धाविहीन असुरों में परिणत कर दिया है। इस तरह वे, जितना ही भगवान् के दिव्य कार्यकलापों से दूर हटते जाते हैं, उतना ही अधिक संसारी कार्यों के अभ्यस्त होते जाते हैं जिससे भगवद्भ्राम जाने के बजाय उनका नरक जाने का मार्ग साफ होता रहता है।\* *श्रीमद्भागवत* पाण्डवों के इतिहास (आवश्यक राजनीति तथा सामाजिक कार्यों से युक्त) से प्रारम्भ होता है, तो भी यह परमहंस संहिता अथवा श्रेष्ठ योगी के लिए

वैदिक साहित्य कहलाता है और इसमें परं ज्ञानम् अर्थात् सर्वोच्च दिव्य ज्ञान का वर्णन मिलता है। भगवान् के सारे शुद्ध भक्त परमहंस हैं। वे उन हंसों के समान हैं, जो दूध तथा पानी के मिश्रण में से दूध विलग करके पीने की कला जानते हैं।

start footnote here

पचास वर्ष पूर्व तक सभी भारतीयों की सामाजिक संरचना इतनी सुव्यवस्थित थी कि लोग ऐसा साहित्य नहीं पढ़ा करते थे, जो भगवान् के कार्यकलापों से जुड़ा न हो। वे ऐसा नाटक नहीं खेलते थे, जो भगवान् से सम्बन्धित न हो। वे ऐसे मेले या उत्सव का आयोजन भी नहीं करते थे, जो ईश्वर से सम्बन्धित न हो। न ही वे ऐसे स्थानों में जाते थे, जो पवित्र न हो तथा भगवान् की लीलाओं से पवित्र न हुआ हो। इसीलिए देहात का सामान्य व्यक्ति तक रामायण, महाभारत, गीता तथा भागवत के बारे में अपने बचपन से ही चर्चाएँ करने लगता था। किन्तु कलियुग के प्रभाव से, वे सब कूकरो-सूकरो की सभ्यता को प्राप्त हो चुके हैं और दिव्य ज्ञान की परवाह किये बिना, रोटी कमाने के लिए श्रम करते रहते हैं।

foot note ends here

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महा-रथः ।

बाल-क्रीडनकैः क्रीडन् कृष्ण-क्रीडां य आददे ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निश्चय ही; भागवतः—भगवान् के महान् भक्त; राजा—महाराज परीक्षित; पाण्डवेयः—पाण्डवों का पौत्र; महा-रथः—महान् योद्धा; बाल—बाल्यावस्था में ही; क्रीडनकैः—खिलौनों के साथ; क्रीडन्—खेलते हुए; कृष्ण—भगवान् कृष्ण के; क्रीडाम्—कार्य-कलापों को; यः—जिसने; आददे—स्वीकार किया।

पाण्डवों के पौत्र महाराज परीक्षित अपने बाल्यकाल से भगवान् के महान् भक्त थे। वे खिलौनों से खेलते समय भी अपने कुलदेव की पूजा का अनुकरण करते हुए भगवान् कृष्ण की पूजा किया करते थे।

तात्पर्य : भगवद्गीता में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति समुचित रीति से योगाभ्यास करने में विफल रह जाता है, उसे भी ब्राह्मणों या सम्पन्न क्षत्रिय राजाओं या वणिकों के घर में जन्म लेने का अवसर प्रदान किया जाता है। किन्तु महाराज परीक्षित तो इनसे बढ़कर थे, क्योंकि वे अपने पूर्वजन्म में



भी महान् भगवद्भक्त थे। अतएव उन्होंने कुरुओं के राजवंश में और विशेष रूप से पाण्डवों के कुल में, जन्म लिया। अतः उन्हें बचपन से ही अपने परिवार में भगवान् कृष्ण की भक्ति से भलीभाँति परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। सारे पाण्डव स्वयं भगवान् के भक्त होने के कारण राजमहल के कुलदेवता का सम्मान करते थे। सौभाग्यवश ऐसे परिवारों में जन्म लेनेवाले बालक अपने बाल्यकाल के खेलों में भी ऐसी देवपूजा का अनुसरण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से हमें भी एक वैष्णव कुल में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और हमने अपने पिता का अनुकरण करते हुए बचपन में भगवान् कृष्ण की पूजा का अनुसरण किया। हमारे पिता हमें सभी उत्सव मनाने के लिए प्रोत्साहित करते रहे, चाहे वह रथ यात्रा हो या दोल यात्रा और हम बालकों को तथा हमारे मित्रों को *प्रसाद* वितरित करने में खुले दिल से धन भी व्यय करते रहे। हमारे गुरु भी वैष्णव कुल में उत्पन्न हुए थे और उन्हें अपने महान् वैष्णव पिता ठाकुर भक्तिविनोद से सारा प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा। सारे भाग्यशाली वैष्णव परिवारों में ऐसा ही होता है। सुप्रसिद्ध मीराबाई गोवर्धन-धारी भगवान् कृष्ण की महान् भक्तिन थीं।

ऐसे भक्तों का जीवन बहुधा एक-जैसा होता है, क्योंकि भगवान् के सभी बड़े-बड़े भक्तों के प्रारम्भिक जीवन में समानता रहती है। जीव गोस्वामी के अनुसार, महाराज परीक्षित ने भगवान् कृष्ण की वृन्दावन की बाललीलाओं को अवश्य सुना होगा, क्योंकि वे अपने किशोर सखाओं के साथ इन लीलाओं का अनुकरण करते थे। श्रीधर स्वामी के अनुसार, महाराज परीक्षित गुरुजनों द्वारा कुलदेवता की पूजा का अनुकरण करते थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भी श्रील जीव गोस्वामी के कथन की पुष्टि की है। उनके मतानुसार महाराज परीक्षित को बाल्यकाल से ही भगवान् कृष्ण की भक्ति में आसक्ति थी। उन्होंने उपर्युक्त कार्यकलापों में से किसी का अनुकरण किया होगा और ये सभी कार्यकलाप यह सिद्ध करते हैं कि वे बाल्यकाल से भक्त थे, जो कि *महाभागवत* का लक्षण है। ऐसे *महाभागवत* नित्य-सिद्ध कहलाते हैं, जिसका अर्थ है जन्म से ही मुक्तात्मा होना, किन्तु ऐसे भी लोग हैं, जो जन्म से ही मुक्त न हों, अपितु संगति से भक्ति की प्रवृत्ति विकसित करते हों। ऐसे लोग *साधन-सिद्ध* कहलाते हैं। अन्ततोगत्वा इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि

शुद्ध भक्तों की संगति से कोई भी साधनसिद्ध भगवद्भक्त बन सकता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमारे महान् गुरु श्री नारद मुनि हैं। अपने पूर्व-जन्म में वे मात्र एक दासीपुत्र थे, किन्तु महान् भक्तों की संगति से, वे ऐसे भगवद्भक्त बन गये जो भक्ति-मय सेवा के इतिहास में अद्वितीय हैं।

वैयासकिश्च भगवान् वासुदेव-परायणः ।

ऊरुगाय-गुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वैयासिकः—व्यासदेव के पुत्र; च—भी; भगवान्—दिव्य ज्ञान से पूर्ण; वासुदेव—भगवान् कृष्ण पर; परायणः—अनुरक्त; ऊरुगाय—महान् दार्शनिकों द्वारा महिमान्वित भगवान् कृष्ण का; गुण-उदाराः—महान् गुण; सताम्—भक्तों का; स्युः—अवश्य हुआ; हि—निश्चय ही; समागमे—उपस्थिति से।

व्यासपुत्र शुकदेव गोस्वामी दिव्य ज्ञान से पूर्ण भी थे और वसुदेव-पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के महान् भक्त भी थे। अतएव भगवान् कृष्ण-विषयक चर्चाएँ अवश्य चलती रही होंगी, क्योंकि बड़े-बड़े दार्शनिकों द्वारा तथा महान् भक्तों की सभा में कृष्ण के गुणों का बखाना होता ही रहता है।

तात्पर्य : इस श्लोक में सताम् शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सताम् का अर्थ है 'शुद्ध भक्त' जिसे भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती। ऐसे भक्तों की संगति में ही भगवान् कृष्ण के दिव्य यश का सही-सही वर्णन हो सकता है। भगवान् ने कहा है कि उनकी कथाएँ आध्यात्मिक महत्त्व से युक्त होती हैं और यदि कोई एक बार भी सताम् की संगति में भगवान् के विषय में श्रवण करता है, तो उसे इस महान् शक्ति का आभास मिल जाता है और उसमें स्वतः भक्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, महाराज परीक्षित जन्म से ही भगवान् के भक्त थे। उसी तरह शुकदेव गोस्वामी भी थे। वे दोनों समान स्तर पर थे, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज परीक्षित राजसी सुविधाओं के अभ्यस्त थे जबकि शुकदेव गोस्वामी एक आदर्श महान् त्यागी थे, यहाँ तक कि वे शरीर में वस्त्र भी नहीं धारण करते थे। ऊपर-ऊपर से दोनों में विरोधाभास दिख सकता है, लेकिन मूलतः दोनों ही अनन्य शुद्ध भगवद्भक्त थे। जब ऐसे भक्त इकट्ठे जुटते हैं, तो उनके पास भगवान् की महिमा-चर्चा करने या भक्तियोग के अतिरिक्त अन्य कोई विषय नहीं रहता। भगवद्गीता में भी जब भगवान् तथा उनके भक्त अर्जुन के बीच वार्ता हुई तो भक्तियोग के अतिरिक्त कोई दूसरी चर्चा

नहीं हो सकती थी। फिर भी इस पर संसारी विद्वान अपने-अपने तरीके से सोच सकते हैं। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, *वैयासकिः* शब्द के बाद च शब्द का प्रयोग यह बताता है कि शुकदेव गोस्वामी तथा महाराज परीक्षित दोनों ही पहले से ही एक कोटि के थे, यद्यपि उनमें से एक गुरु की भूमिका निभा रहा था और दूसरा शिष्य की। चूँकि श्रीकृष्ण ही कथाओं के केन्द्र हैं, अतएव *वासुदेव-परायणः* शब्द वासुदेव के भक्त को सामान्य लक्ष्य के तौर पर सूचित करता है। यद्यपि वहाँ पर अनेक अन्य लोग एकत्रित थे जहाँ महाराज परीक्षित उपवास कर रहे थे, लेकिन सहज निष्कर्ष यह निकलता है कि वहाँ पर कृष्ण के महिमा-गायन के अतिरिक्त अन्य कोई चर्चा नहीं हुई होगी, क्योंकि प्रमुख वक्ता शुकदेव गोस्वामी थे और प्रमुख श्रोता महाराज परीक्षित थे। अतएव भगवान् के दो प्रमुख भक्तों के बीच कहे तथा सुने जाने के कारण *श्रीमद्भागवत* भगवान् श्रीकृष्ण के महिमा-गायन के ही निमित्त है।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।

तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तम-श्लोक-वार्तया ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

आयुः—उम्र; हरति—घटाता है; वै—निश्चय ही; पुंसाम्—लोगों की; उद्यन्—उदय होते; अस्तम्—अस्त होते; च—भी; यन्—चलते हुए; असौ—सूर्य; तस्य—भगवान् की महिमा का गायन करनेवाले का; ऋते—सिवाय; यत्—जिससे; क्षणः—समय; नीतः—उपयोग किया हुआ; उत्तम-श्लोक—सर्वोत्तम भगवान् की; वार्तया—वार्ताओं में।

उदय तथा अस्त होते हुए सूर्य सबों की आयु को क्षीण करता है, किन्तु जो सर्वोत्तम भगवान् की कथाओं की चर्चा चलाने में अपने समय का सदुपयोग करता हैं, उसकी आयु क्षीण नहीं होती।

**तात्पर्य :** यह श्लोक, अप्रत्यक्ष रूप से, भक्ति-मय सेवा को त्वरित करके भगवान् के भूले सम्बन्धों की अनुभूति कराने के लिए मानव जीवन का सदुपयोग करने की महत्ता की पुष्टि करता है। कहा गया है कि काल तथा ज्वार-भाटा किसी की प्रतीक्षा नहीं करते। अतएव सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय व्यर्थ ही बीतेगा, यदि इसका उपयोग आध्यात्मिक मूल्यों की पहचान के लिए नहीं किया जाता। जीवन-काल के किसी अंश के नष्ट हो जाने पर कितनी भी स्वर्ण-राशि देकर इसकी भरपाई नहीं की जा सकती। जीव को यह मनुष्य-जीवन इसलिए प्रदान किया जाता है कि वह अपनी आध्यात्मिक पहचान एवं अपने सुख के स्थायी स्रोत को जान सके। जीव तो और वह भी मनुष्य, सुख

की तलाश में रहता है, क्योंकि सुख जीव की प्राकृतिक अवस्था है। किन्तु वह भौतिक परिवेश में व्यर्थ ही उसकी खोज करता है। जीव स्वाभाविक दृष्टि से परम पूर्ण का आध्यात्मिक स्फुलिंग है और उसका सुख उसके आध्यात्मिक कार्यों से पूर्णतः अनुभवगम्य है। भगवान् पूर्ण आत्मा हैं और उनका नाम, रूप, गुण, लीलाएँ, पार्षद तथा व्यक्तित्व सभी उनसे अभिन्न हैं। मानव के एक बार भक्ति के सही मार्ग से भगवान् की उपर्युक्त शक्तियों में से किसी एक के भी सम्पर्क में आते ही, तुरन्त उसके लिए सिद्धि के द्वार खुल जाते हैं। *भगवद्गीता* (२.४०) में भगवान् ने ऐसे सम्पर्क की व्याख्या इन शब्दों में की है, “भक्ति के लिए किये गये प्रयास निष्फल नहीं होते। ऐसे कार्यों का शुभारम्भ भी मनुष्य को भौतिक भय के पारावार से उबारने के लिए पर्याप्त है।” जिस प्रकार उच्चतम क्षमता की औषधि नसों के माध्यम से इंजेक्शन लगाते ही सारे शरीर पर अपना प्रभाव दिखा देती है, उसी प्रकार भगवद्भक्त के कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट होनेवाली भगवान् की कथाएँ बड़ी तेजी से कार्य करती हैं। दिव्य कथाओं का श्रवण द्वारा पान करने का अर्थ है पूर्ण अनुभूति, जिस तरह वृक्ष के किसी अंग में फल लगने का अर्थ है पूरे वृक्ष का फलित होना। शुकदेव गोस्वामी जैसे शुद्ध भक्त के संग में की गई यह क्षणमात्र की अनुभूति मनुष्य-जीवन को अमरत्व प्रदान करती है। इस प्रकार सूर्य शुद्ध भक्त की आयु को चुरा नहीं पाता, क्योंकि भक्त भगवान् की सेवा में लगा रहकर अपने जीवन को शुद्ध कर लेता है। मृत्यु शाश्वत जीव के भौतिक संदूषण का लक्षण है। इसी संदूषण के कारण जीव जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के नियमों के अधीन हो जाता है।

जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उद्धरण दिया है, दान जैसे पुण्य कर्म की भौतिक रीति की संस्तुति *स्मृति* शास्त्रों द्वारा की गई है। सुपात्र को दान में दिया गया धन अगले जीवन के लिए सुनिश्चित बैंक-बचत जैसा है। ऐसा दान ब्राह्मण को दिये जाने की संस्तुति है। यदि यह धन अब्राह्मण (ब्राह्मण गुणों से विहीन) को दान में दिया जाता है, तो वह उसी अनुपात में अगले जन्म में वापस हो जाता है। यदि यह धन अर्धशिक्षित ब्राह्मण को दिया जाता है, तो भी यह दुगुना होकर लौट आता है। किन्तु यदि यह धन पूर्णतः योग्य ब्राह्मण को दिया जाता है, तो वह सैंकड़ों हजारों गुना होकर वापस मिलता है। यदि यही धन *वेद-पारग* (जिसे सचमुच वेदों के पथ की अनुभूति हो चुकी है) को दिया

जाता है, तो वह असंख्य गुना होकर मिलता है। वैदिक ज्ञान का चरम लक्ष्य भगवान् कृष्ण की अनुभूति है जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है ( *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः* )। दान में जो भी धन दिया जाता है उसके लौटने की गारंटी है, चाहे उसका अनुपात जो भी हो। इसी प्रकार, शुद्ध भक्त की संगति से भगवान् की दिव्य कथाओं के श्रवण तथा कीर्तन में बिताया गया एक क्षण शाश्वत जीवन या भगवद्धाम लौटने की पूरी गारंटी है। *मद्धाम गत्वा पुनर्जन्म न विद्यते*। दूसरे शब्दों में, भगवद्भक्त को शाश्वत जीवन की गारंटी रहती है। इस जीवन में भक्त का बुढ़ापा या रोग ऐसे गारंटीयुक्त शाश्वत जीवन के लिए प्रोत्साहन मात्र ही है।

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।

न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामे पशवोऽपरे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तरवः—वृक्ष; किम्—क्या; न—नहीं; जीवन्ति—जीवित रहते हैं; भस्त्राः—धौंकनी; किम्—क्या; न—नहीं; श्वसन्ति—साँस लेते हैं; उत—भी; न—नहीं; खादन्ति—खाते हैं; न—नहीं; मेहन्ति—वीर्य स्खलित करते हैं; किम्—क्या; ग्रामे—स्थान में; पशवः—पशु-तुल्य जीव; अपरे—अन्य।

क्या वृक्ष जीते नहीं हैं? क्या लुहार की धौंकनी साँस नहीं लेती? हमारे चारों ओर क्या पशुगण भोजन नहीं करते? या वीर्यपात नहीं करते?

तात्पर्य : आधुनिक युग का भौतिकतावादी व्यक्ति तर्क करेगा कि जीवन या इसका कोई भी अंश अध्यात्म-विद्या या धर्मशास्त्र-विषयक वाद-विवाद के लिए नहीं है। जीवन तो अधिकाधिक काल तक खाने, पीने, संभोग करने, मौज-मस्ती करने और आनन्द लूटने के लिए है। आधुनिक व्यक्ति भौतिक विज्ञान की उन्नति के द्वारा सदा-सदा के लिए जीवित रहना चाहता है। अधिकतम अवधि तथा जीवन को दीर्घ बनाने के लिए अनेक मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त हैं। किन्तु *श्रीमद्भागवत* आगाह करती है कि यह जीवन केवल आर्थिक विकास या खाने, पीने, मौज उड़ाने के भोगवादी दर्शन के लिए अथवा भौतिकतावादी विज्ञान के विकास के लिए नहीं मिला है। जीवन तो एकमात्र *तपस्या* के लिए, शुद्धि के लिए मिला है, जिससे मनुष्य इस जीवन के अन्त होने पर शाश्वत जीवन में प्रवेश कर सके।

भौतिकतावादी इस जीवन को अधिक से अधिक दीर्घ बनाना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें अगले जीवन की कोई खबर नहीं रहती। वे इसी जीवन में अधिकतम सुख चाहते हैं, क्योंकि वे अन्तिम रूप से

सोचते हैं कि मृत्यु के बाद जीवन नहीं होता। जीव की नित्यता के विषय में अज्ञानता तथा भौतिक जगत में आवरण के परिवर्तन ने आधुनिक मानव समाज की संरचना में उत्पात मचा रखा है, फलस्वरूप अनेक समस्याएँ आ गई हैं, जिन्हें आधुनिकीकृत मनुष्य की विविध योजनाओं ने द्विगुणित कर दिया है। समाज की समस्याओं को हल करने की योजनाओं ने इन कठिनाइयों को और ही भड़का दिया है। यदि यह मान लिया जाय कि मनुष्य की आयु बढ़कर एक सौ वर्ष से भी ऊपर हो जाय तो जरूरी नहीं है कि मानव सभ्यता का विकास होगा। *भागवत* का कथन है कि कुछ वृक्ष सैकड़ों-हजारों वर्षों तक जीवित रहते हैं। वृन्दावन में एक इमली का वृक्ष है (यह स्थान इमलीताल कहलाता है) जो वहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण के समय से स्थित बताया जाता है। कलकत्ते के वानस्पतिक उद्यान में एक बरगद का वृक्ष है, जो पाँच सौ वर्षों से भी पुराना कहा जाता है और विश्वभर में ऐसे अनेक वृक्ष हैं। स्वामी शंकराचार्य केवल ३२ वर्ष जीवित रहे और भगवान् चैतन्य महाप्रभु केवल ४८ वर्ष रहे। तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि उपर्युक्त वृक्षों का दीर्घजीवन शंकर या चैतन्य से अधिक महत्त्वपूर्ण है? बिना आध्यात्मिक महत्त्व के दीर्घजीवन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता। मनुष्य सन्देह कर सकता है कि वृक्ष इसीलिए जीवित हैं क्योंकि वे श्वास नहीं लेते, किन्तु आधुनिक विज्ञानियों ने, यथा बोस ने, यह पहले ही सिद्ध कर दिया है कि पौधों में भी प्राण है, अतएव श्वास लेना वास्तविक जीवन का लक्षण नहीं है। *भागवत* का कहना है कि लुहार की धौंकनी तेजी से श्वास लेती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि धौंकनी में प्राण है। भौतिकतावादी तर्क करेगा कि पौधे का प्राण तथा मनुष्य का प्राण एकसमान नहीं, क्योंकि पौधा न तो नाना प्रकार के पकवान खा सकता है और न सम्भोग-सुख उठा सकता है। इसके उत्तर में *भागवत* यह पूछती है कि क्या एक ही गाँव में मनुष्यों के साथ रहनेवाले कूकर-सूकर नहीं खाते या विषयी जीवन नहीं बिताते? *श्रीमद्भागवत* में 'अन्य पशुओं' का जो विशेष उल्लेख हुआ है, उसका अर्थ यह है कि जो पुरुष केवल खाने, श्वास लेने तथा संभोग करने के पाशविक जीवन को कुछ बेहतर बनाने में लगे रहते हैं, वे मनुष्य के रूप में पशु होते हैं। बेहतर दिखने वाले इस प्रकार के पशुओं का समाज दुखी मानवता को कभी लाभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि एक पशु दूसरे पशु को हानि तो पहुँचा सकता है, किन्तु कोई विरला ही लाभ पहुँचा सकता है।

श्व-विड्वराहोष्ट्र-खरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।

न यत्कर्ण-पथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्व—कुत्ता; विट्-वराह—ग्रामीण शूकर, जो विष्ठा खाता है; उष्ट्र—ऊँट; खरैः—तथा गधों से; संस्तुतः—पूर्णतया प्रशंसित;  
पुरुषः—व्यक्ति; पशुः—पशु; न—कभी नहीं; यत्—उसका; कर्ण—कान; पथ—रास्ता; उपेतः—पहुँचा हुआ; जातु—किसी  
समय; नाम—पवित्र नाम; गदाग्रजः—समस्त बुराइयों से उद्धार करनेवाले भगवान् कृष्ण ।

कुत्तों, सूकरों, ऊँटों तथा गधों जैसे पुरुष, उन पुरुषों की प्रशंसा करते हैं, जो समस्त बुराइयों से उद्धार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का कभी भी श्रवण नहीं करते।

तात्पर्य : जन-सामान्य को यदि जीवन के उच्चतर आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जाती तो वे पशु से भी अधम हैं और इस श्लोक में उनकी समता कुत्तों, शूकरों, ऊँटों तथा गधों से की गई है। आधुनिक विश्वविद्यालय की शिक्षा एक तरह से मनुष्य को कूकरों की मनोवृत्ति प्रदान करती है, जिससे किसी बड़े मालिक की सेवा की जाय। तथाकथित शिक्षा को पूरी कर लेने के बाद तथाकथित शिक्षित व्यक्ति किसी नौकरी के लिए द्वार-द्वार कुत्तों की भाँति घूमते रहते हैं और उनमें से अधिकतर यह कहकर दुत्कार दिये जाते हैं कि कोई स्थान नहीं है। जिस प्रकार कुत्ते उपेक्षित पशु हैं और एक रोटी के टुकड़े के लिए अपने स्वामी की आज्ञापूर्वक सेवा करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी पर्याप्त फल पाये बिना स्वामी की आज्ञा का पालन करता है।

जो लोग खाने के मामले में कोई भेदभाव नहीं बरतते और सभी प्रकार की सड़ी-गली वस्तुएँ खाते हैं, वे शूकर तुल्य हैं। शूकरों को मल खाना पसन्द है। इस तरह मल पशु विशेष का प्रिय खाद्य है। इसी तरह कुछ पशु या पक्षी पत्थर तक खाते हैं। किन्तु मनुष्य सभी तरह की वस्तुएँ खाने के लिए नहीं बना; वह तो अन्न, शाक, फल, दूध, चीनी इत्यादि खाने के लिए आया है। पशु-आहार मनुष्यों के लिए नहीं है। ठोस भोजन चबाने के लिए मनुष्य में विशेष प्रकार के दाँत होते हैं जिनसे वह फल तथा शाक काट सकता है। मनुष्य के दो कुकुर-दाँत भी होते हैं जिनसे, यदि वह चाहे तो, पशु-भोजन खा सकता है। यह सबों को ज्ञात है कि एक मनुष्य के लिए जो भोजन है, वही दूसरे मनुष्य के लिए विष हो सकता है। मनुष्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे भगवान् श्रीकृष्ण को अर्पित भोग के बचे-खुचे

अंश को ग्रहण करेंगे और भगवान् पत्र, पुष्प, फल आदि ग्रहण करते हैं ( भगवद्गीता ९.२६ )। वैदिक शास्त्रों में कहा गया है कि भगवान् को कभी पशु-आहार अर्पित नहीं करना चाहिए। अतएव मनुष्य विशेष प्रकार का भोजन करने के लिए है। उसे तथाकथित विटामिनों की पूर्ति के लिए पशुओं का अनुकरण नहीं करना चाहिए। अतएव जो व्यक्ति भोजन के मामले में विवेक से काम नहीं लेता, उसे शूकर के तुल्य बताया गया है।

ऊँट एक ऐसा पशु है, जो कँटीली वस्तुएँ खाने से आनन्दित होता है। जो व्यक्ति पारिवारिक जीवन या तथाकथित भोग का सांसारिक जीवन बिताना चाहता है, उसकी तुलना ऊँट से की गई है। भौतिकतावादी जीवन काँटों से भरा हुआ है अतएव मनुष्य को चाहिए कि वैदिक अनुष्ठानों की संस्तुत विधि के अनुसार जीवनयापन करे, जिससे बुरे से बुरे सौदे से भी लाभ लिया जा सके। भौतिक जगत में अपना ही खून चूस कर पालन-पोषण करना होता है। भौतिक भोग का आकर्षण-केन्द्र विषयी जीवन है। विषयी जीवन का भोग अपना खून चूसना होता है, इस प्रसंग में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। ऊँट भी, कँटीली टहनियाँ चबाते समय, अपना रक्त चूसता है। ऊँट जिन कँटीली टहनियों को खाता है, वे उसकी जीभ को काट देती हैं, जिससे उसके मुँह के भीतर खून आने लगता है। रक्त के साथ मिलकर काँटे मूर्ख ऊँट के लिए स्वाद उत्पन्न कर देते हैं और वह झूठे आनन्द के साथ काँटे खाने में लगा रहता है। इसी प्रकार बड़े-बड़े व्यापारी और उद्योगपति जो विभिन्न साधनों से या संदेहास्पद साधनों से धन कमाने के लिए कठोर श्रम करते हैं, अपने रक्त से मिश्रित अपने कर्मों का कँटीला फल खाते हैं। इसीलिए *भागवत* में इन रुग्ण पुरुषों की गणना ऊँटों के साथ की गई है।

गधा ऐसा पशु है, जो पशुओं में सबसे बड़ा मूर्ख माना जाता है। गधा कठिन श्रम करता है और, बिना किसी लाभ के, भारी से भारी बोझ ढोता है\*

## START FOOTNOTE

मनुष्य जीवन मूल्यों की प्राप्ति के लिए है। यह जीवन अर्थदम् अर्थात् मूल्य प्रदान करनेवाला कहलाता है। और जीवन का सबसे बड़ा मूल्य क्या है? यह है भगवद्धाम वापस जाना, जैसाकि



भगवद्गीता (८.१५) में इंगित हुआ है। मनुष्य के स्वार्थ का लक्ष्य भगवद्धाम वापस जाना होना चाहिए। गधा अपना हित नहीं पहचानता। वह दूसरों के लिए कठिन श्रम करता है। जो व्यक्ति मानव जीवन में, अपने निजी हित को भूलकर केवल दूसरों के लिए ही कार्य करता है, वह गधे के समान है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है—

*अशीतिं चतुरश्रैव लक्षांस्ताञ्जीवजातिषु।*

*भ्रमद्भिः पुरुषैः प्राप्यं मानुष्यं जन्म-पर्ययात् ॥*

*तदप्यभलतां जातः तेषां आत्माभिमानिनाम्।*

*वराकाणाम् अनाश्रित्य गोविन्दचरणद्वयम् ॥*

मानव जीवन इतना महत्त्वपूर्ण है कि स्वर्ग-लोक के देवता भी कभी-कभी इस धरा पर मनुष्य-देह की कामना करते हैं, क्योंकि मानव शरीर में ही मनुष्य भगवद्धाम को सरलता से वापस जा सकता है। यदि ऐसा महत्त्वपूर्ण शरीर प्राप्त करके भी कोई गोविन्द, श्रीकृष्ण के साथ अपने भूले हुए नित्य सम्बन्ध को पुनःस्थापित नहीं कर पाता, तो वह निश्चय ही मूर्ख है, जिसने अपना सारा स्वार्थ भुला दिया है। यह मनुष्य-देह चौरासी लाख योनियों में क्रमशः घूमने के बाद प्राप्त होती है। और बेचारा मनुष्य अपने स्वार्थ को भूलकर राजनीतिक उत्थान तथा आर्थिक विकास के नेता के रूप में अन्यो को ऊपर उठाने के अनेक भ्रामक कार्यों में संलग्न रहता है। राजनीतिक उत्थान या आर्थिक विकास के लिए प्रयास करने में कोई हानि नहीं है, किन्तु मनुष्य को जीवन के असली उद्देश्य को भूलना नहीं चाहिए। ऐसे सारे परोपकारी कार्यों को भगवद्धाम वापस जाने के साथ जोड़ देना चाहिए। जो मनुष्य यह नहीं जानता, वह उस गधे के तुल्य है, जो दूसरों या अपने कल्याण की परवाह न करके अन्यो के लिए ही कार्य करता है।

## END FOOTNOTE

सामान्यतया धोबी गधे को रखता है, जिसकी स्वयं की स्थिति सम्मानजनक नहीं होती और गधे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गधी द्वारा उसे डुलती मारे जाने पर वह उसका अभ्यस्त हो जाता

है। जब गधा मैथुन के लिए ललचाता है, तो गधी दुलत्ती चलाती है, फिर भी गधा मैथुन के लिए उसके पीछे-पीछे लगा रहता है। अतएव पत्नी के गुलाम की तुलना गधे से की जाती है। जनसामान्य, इस कलियुग में विशेषरूप से, अत्यधिक श्रम करता है। वह गधे के कार्य में लगा रहता है, वह भारी बोझा ढोता है और ठेला तथा रिक्शा खींचता है। मानव सभ्यता के तथाकथित विकास ने मनुष्य को गधे के कार्य में लगा रखा है। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों तथा कार्यशालाओं में भी श्रमिक-गण भारी काम में लगे रहते हैं और दिन भर कठिन श्रम करने के बाद फिर से बेचारे मजदूर को घर पर न केवल कामसुख के लिए अपितु अनेक घरेलू कार्यों के लिए उसकी स्त्री लतियाती है।

अतएव *श्रीमद्भागवत* द्वारा आध्यात्मिक प्रकाश के बिना सामान्य मनुष्य को कूकरों, शूकरों, ऊँटों तथा गधों की श्रेणी में रखा जाना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है। भले ही ऐसे अज्ञानी जनसमूह के नेता तमाम शूकरों द्वारा पूजित होने के लिए गर्वित हों, किन्तु यह कोई सम्मान नहीं है। *भागवत* तो खुला घोषित करती है कि कोई व्यक्ति भले ही ऐसे कूकरों-सूकरों के वेश में मनुष्यों का नेता हो, किन्तु यदि उसे कृष्ण के विज्ञान से अवगत होने में अभिरुचि नहीं है, तो ऐसा व्यक्ति पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसे शक्तिशाली प्रबल पशु या विशाल पशु कहा जा सकता है, किन्तु *श्रीमद्भागवत* के अनुसार, उसे अपने नास्तिकतावादी स्वभाव के कारण मनुष्य की कोटि में कभी नहीं रखा जा सकता। अथवा दूसरे शब्दों में, कूकरों-सूकरों जैसे व्यक्तियों के ईश्वर-विहीन नेता पशुओं से भी बढ़कर हैं, जिनमें पाशविक गुणों का अनुपात अधिक है।

बिले बतोरुक्रम-विक्रमान् ये

न शृण्वतः कर्ण-पुटे नरस्य ।

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत

न चोपगायत्युरुगाय-गाथाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

बिले—साँपों के बिल; बत—सदृश; उरुक्रम—अद्भुत कार्य करनेवाले भगवान्; विक्रमान्—शौर्य; ये—जो सब; न—कभी नहीं; शृण्वतः—सुनते हैं; कर्ण-पुटे—कर्ण-छिद्रों में; नरस्य—मनुष्य के; जिह्वा—जीभ; असती—व्यर्थ; दार्दुरिका—मेंढकों के; इव—सदृश; सूत—हे सूत गोस्वामी; न—कभी नहीं; च—भी; उपगायति—तेजी से उच्चारण करती है; उरुगाय—गाने योग्य; गाथाः—गीत।

जिसने भगवान् के शौर्य तथा अद्भुत कार्यों की कथाएँ नहीं सुनी हैं तथा जिसने भगवान्

के विषय में गीतों को गाया या उच्चस्वर से उच्चारण नहीं किया है, उसके श्रवण-रंध्र मानो साँप के बिल हैं और जीभ मानो मेंढक की जीभ है।

**तात्पर्य :** भगवान् की भक्ति-मय सेवा शरीर के सभी अंगों या उपागों द्वारा सम्पन्न होती है। यह आत्मा की दिव्य गतिशील शक्ति है। अतएव भक्त भगवान् की सेवा में शत-प्रतिशत लग जाता है। भक्ति कोई तभी कर सकता है, जब उसके शरीर की इन्द्रियाँ भगवान् के सम्बन्ध की दृष्टि से शुद्ध हों और वह अपनी समस्त इन्द्रियों से भगवान् की सेवा कर सकता हो। फलतः जब तक इन्द्रियाँ केवल इन्द्रिय-तृप्ति में लगी रहती हैं, तब तक इन्द्रियों तथा उनके कार्यों को अशुद्ध या भौतिकतावादी ही मानना चाहिए। शुद्ध इन्द्रियाँ इन्द्रिय-तृप्ति में नहीं, अपितु पूर्णतः भगवान् की सेवा में लगी रहती हैं। भगवान् अपनी समस्त इन्द्रियों समेत परमेश्वर हैं और सेवक, जो भगवान् का अंश-स्वरूप है, वह भी उन्हीं इन्द्रियों से युक्त होता है। भगवान् की सेवा इन्द्रियों का नितान्त शुद्ध उपयोग है, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है। भगवान् ने पूर्ण इन्द्रियों से उपदेश दिया और अर्जुन ने पूर्ण इन्द्रियों से उसे ग्रहण किया। इस प्रकार यह गुरु तथा शिष्य के मध्य ज्ञेय तथा तार्किक ज्ञान का पूर्ण विनिमय था। आध्यात्मिक ज्ञान कोई विद्युत् आवेश नहीं है, जो गुरु से शिष्य में प्रवेश करता है, जैसाकि कुछ प्रचारक मूर्खतावश दावा करते हैं। प्रत्येक वस्तु ज्ञान तथा तर्क से पूर्ण है और गुरु तथा शिष्य के मध्य विचारों का आदान-प्रदान तभी सम्भव है, जब उसे विनीत भाव तथा सचाई से ग्रहण किया जाय। *चैतन्य-चरितामृत* में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि तथा पूर्ण चेतना से युक्त होकर भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ ग्रहण करे, जिससे वह महान् ध्येय को तर्क द्वारा समझ सके।

जीव की विभिन्न इन्द्रियाँ अशुद्ध अवस्था में संसारी कार्यों में संलग्न रहती हैं। यदि उसके कान, *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* का श्रवण करते हुए भगवान् की सेवा में नहीं लगे रहते, तो यह निश्चित है कि उसके कानों के छेद कूड़ा-करकट से भर जायेंगे। अतएव *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के सन्देशों का प्रसार उच्च स्वर से विश्व भर में होना चाहिए। यह उस शुद्ध भक्त का कर्तव्य है, जिसने सही स्रोत से उनके विषय में श्रवण किया है। बहुत से लोग दूसरों से कुछ बोलना चाहते रहते हैं, लेकिन चूँकि उन्हें वैदिक विद्या के विषय में बोलने की शिक्षा नहीं दी गई रहती, अतएव वे व्यर्थ की

बातें करते हैं और लोग उन्हें बिना समझे सुनते रहते हैं। सांसारिक खबरों को फैलाने के एक नहीं सैकड़ों- हजारों साधन हैं और संसार भर के लोग उन्हें ग्रहण भी करते रहते हैं। इसी तरह संसार भर के लोगों को भगवान् की दिव्य कथाएँ सुनने के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए और भगवान् के भक्त को चाहिए कि उच्चस्वर से बोले, जिससे लोग सुन सकें। मेंढक उच्चस्वर से टरते हैं, जिनके कारण वे साँपों को आमन्त्रण देते हैं, जो उन्हें खा जाते हैं। मनुष्य को विशेषरूप से वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए जीभ प्रदान की गई है, मेंढकों के समान टरने के लिए नहीं। इस श्लोक में प्रयुक्त *असती* शब्द भी महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है 'ऐसी स्त्री जो वेश्या बन गई है।' वेश्या अपने उत्तम स्त्री-गुणों के लिए विख्यात नहीं है। इसी प्रकार जीभ, जो मनुष्य को वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए मिली है, वेश्या मानी जायेगी यदि उसे किसी सांसारिक प्रलाप के लिए प्रयुक्त किया जाये।

भारः परं पट्ट-किरीट-जुष्ट-

मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।

शावौ करौ नो कुरुते सपर्या

हरेर्लसत्काञ्चन-कङ्कणौ वा ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

भारः—बहुत बड़ा बोझा; परम्—भारी; पट्ट—रेशम; किरीट—पगड़ी; जुष्टम्—से सज्जित; अपि—भी; उत्तम—उत्कृष्ट; अङ्गम्—शरीर के अंग; न—कभी नहीं; नमेत्—झुकते हैं; मुकुन्दम्—उद्धार करनेवाले भगवान् कृष्ण को; शावौ—मृतक शरीर; करौ—दो हाथ; नो—नहीं; कुरुते—करते हैं; सपर्याम्—पूजा; हरेः—भगवान् की; लसत्—चमचमातेहुए; काञ्चन—सुनहरे; कङ्कणौ—दो कंगन; वा—यद्यपि।

शरीर का ऊपरी भाग, भले ही रेशमी पगड़ी से सज्जित क्यों न हो, किन्तु यदि मुक्ति के दाता भगवान् के समक्ष झुकाया नहीं जाता तो वह केवल एक भारी बोझ के समान है। इसी प्रकार चाहे हाथ चमचमाते कंकणों से अलंकृत हों, यदि भगवान् हरि की सेवा में नहीं लगे रहते, तो वे मृत पुरुष के हाथों के तुल्य हैं।

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भगवद्भक्त तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम श्रेणी के भक्त (*महाभागवत*) प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् की सेवा में ही लगा हुआ देखते हैं, किन्तु द्वितीय श्रेणी के भक्त भक्तों तथा अभक्तों में अन्तर करते हैं। अतएव ये द्वितीय श्रेणी के भक्त धर्मोपदेश के लिए उपयुक्त हैं और जैसाकि ऊपर के श्लोक में कहा गया है, उन्हें उच्चस्वर से भगवान् की महिमा का प्रचार करना

चाहिए। इस श्रेणी के भक्त तृतीय श्रेणी के भक्तों या अभक्तों में से अपना शिष्य बनाते हैं। कभी-कभी प्रथम श्रेणी के भक्त भी द्वितीय श्रेणी में आ कर प्रचार-कार्य करते हैं। किन्तु सामान्य व्यक्ति को, जिससे यह आशा की जाती है कि वह कम से कम तृतीय श्रेणी का भक्त तो बन ले, यहाँ पर सलाह दी गई है कि वह भगवान् के मन्दिर में जाय और अर्चाविग्रह के समक्ष झुके, भले ही वह अत्यन्त धनी व्यक्ति या रेशमी पगड़ी अथवा मुकुट पहने राजा ही क्यों न हो। भगवान् तो हर एक के स्वामी हैं, चाहे वह महान् राजा तथा सम्राट ही क्यों न हो। जो लोग संसारी व्यक्तियों की दृष्टि में धनी हैं, उन्हें चाहिए कि वे भगवान् कृष्ण के मन्दिर में जाँय और नियमित रूप से अर्चाविग्रह के समक्ष नतमस्तक हों। मन्दिर में भगवान् पूजनीय रूप को कभी भी पत्थर या लकड़ी का बना न मानें, क्योंकि भगवान् अपने अर्चा-विग्रह अवतार रूप में अपनी शुभ उपस्थिति द्वारा पतिततात्माओं पर अतीव कृपा करनेवाले हैं। जैसाकि इसके पूर्व उल्लेख हो चुका है, श्रवण-विधि से मंदिर में भगवान् के अस्तित्व की यह अनुभूति सम्भव है। अतएव भक्ति के नैतिक कार्यों में पहली विधि श्रवण है, जो अत्यावश्यक है। सभी श्रेणी के भक्तों को *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे प्रामाणिक स्रोतों से श्रवण करना अनिवार्य है। जो व्यक्ति अपने भौतिक पद से गर्वित होकर, मन्दिर में भगवान् के अर्चाविग्रह के समक्ष नतमस्तक नहीं होता या जो बिना किसी ज्ञान के मन्दिर-पूजा का तिरस्कार करता है, उसे यह जान लेना चाहिए कि उसकी यह पगड़ी या मुकुट उसे भवसागर में डुबोने में ही सहायक बनेंगे। यदि डूबते व्यक्ति के सिर पर भारी बोझ हो, तो वह बिना भारवाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक तेजी से डूबेगा। मूर्ख तथा अहंकारी व्यक्ति ईश-विज्ञान का निरादर करता है और कहता है कि उसे ईश्वर से कुछ लेना-देना नहीं, किन्तु जब वह ईश्वर के नियम की पकड़ में आता है और जब उसे मस्तिष्क-शून्यता जैसी बीमारी आ घेरती है, तो वह ईश-विहीन व्यक्ति अपनी भौतिक उपलब्धि के भार से अज्ञान-सागर में डूब जाता है। ईश-चेतना के बिना भौतिक विज्ञान की प्रगति मानव समाज पर सिर के बोझ के तुल्य है। अतएव लोगों को इस प्रबल चेतावनी पर ध्यान देना चाहिए।

यदि सामान्य व्यक्ति को भगवान् की पूजा करने के लिए समय न मिले, तो उसे कम से कम भगवान् के मन्दिर की साप-सफाई में ही सही, कुछ क्षणतो अवश्य बिताने चाहिए। उड़ीसा के अत्यन्त

शक्तिशाली राजा, महाराज प्रतापरुद्र, यद्यपि राज्य के उत्तरदायित्व के भारी बोझ के कारण सदैव व्यस्त रहते थे, फिर भी वे वर्ष में एक बार भगवान् के उत्सव के समय पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की सफाई अपने हाथों से करते थे। भाव यह है कि मनुष्य, चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, उसे परमेश्वर की श्रेष्ठता स्वीकार करनी चाहिए। यह ईश-चेतना मनुष्य को उसकी भौतिक सम्पन्नता में भी सहायक बनती है। भगवान् जगन्नाथ के समक्ष महाराज प्रतापरुद्र की अधीनता ने उन्हें इतना शक्तिशाली राजा बना दिया था कि उनके समय का महान् पठान तक उड़ीसा में न घुस पाया। अन्त में महाराज प्रतापरुद्र की संसार के स्वामी भगवान् की शरणागति से भगवान् श्री चैतन्य ने उन पर कृपा की। इस प्रकार, भले ही धनी पुरुष की स्त्री के हाथ में सोने के कंकण क्यों न हों, उसे भगवान् की सेवा अपने हाथों से करनी चाहिए।

बर्हायिते ते नयने नराणां

लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।

पादौ नृणां तौ द्रुम-जन्म-भाजौ

क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

बर्हायिते—मोर पंखों की भाँति; ते—वे; नयने—आँखें; नराणाम्—मनुष्यों के; लिङ्गानि—स्वरूप; विष्णोः—भगवान् के; न—नहीं; निरीक्षतः—देखते हैं; ये—ऐसे सब; पादौ—पाँव; नृणाम्—मनुष्यों के; तौ—वे; द्रुम-जन्म—वृक्ष से उत्पन्न; भाजौ—उसके सदृश; क्षेत्राणि—पवित्र स्थल; न—नहीं; अनुव्रजतः—जाते हैं; हरेः—भगवान् के; यौ—जो।

जो आँखें भगवान् विष्णु की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों ( उनके रूप, नाम, गुण आदि ) को नहीं देखतीं, वे मोर पंख में अंकित आँखों के तुल्य हैं और जो पाँव तीर्थ-स्थानों की यात्रा नहीं करते ( जहाँ भगवान् का स्मरण किया जाता है ) वे वृक्ष के तनों जैसे माने जाते हैं।

तात्पर्य : विशेष रूप से गृहस्थ भक्तों के लिए अर्चाविग्रह की पूजा की जोरदार संस्तुति की गई है। जहाँ तक सम्भव हो, हर गृहस्थ को, गुरु के आदेशानुसार, विष्णु के श्रीविग्रह की यथा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण या सीताराम जैसे स्वरूपों की या नृसिंह, वराह, गौर-नितार्ई, मत्स्य, कूर्म, शालग्राम शिला, या भगवान् के किसी अन्य रूप तथा त्रिविक्रम, केशव, अच्युत, वासुदेव, नारायण तथा दामोदर जैसे विष्णु के अन्य रूप जिनकी संस्तुति वैष्णव तन्त्रों या पुराणों में की गई है, इनकी स्थापना करनी चाहिए और पूरे परिवार को अर्चन विधि के नियमों का कड़ाई से पालन करते हुए पूजा करनी चाहिए।

परिवार का हर सदस्य, जो बारह वर्ष से ऊपर की आयु का हो, प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले और घर के सारे सदस्य भोर से लेकर रात्रि तक मंगल आरात्रिका, निरञ्जन, अर्चन, पूजा, कीर्तन, श्रृंगार, भोग-वैकाली, सन्ध्या आरात्रिका पाठ, भोग (रात्रि का), शयन आरात्रिका इत्यादि करके भगवान् की सेवा में लगा रहे। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में इस तरह अर्चाविग्रह की पूजा में संलग्न रहने से गृहस्थों को अपना जीवन विमल बनाने तथा आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति करने में सहायता मिलेगी। किसी नौसिखिये भक्त के लिए साधारण पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है। किताबी ज्ञान सैद्धान्तिक होता है, जबकि अर्चन-विधि व्यावहारिक है। आध्यात्मिक ज्ञान का विकास सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान के मेल से किया जाना चाहिए। इससे आध्यात्मिक सिद्धि निश्चित है। नवदीक्षित भक्त के लिए भक्ति का प्रशिक्षण कुशल गुरु पर निर्भर करता है, क्योंकि वह जानता रहता है कि भगवद्धाम जाने के मार्ग में क्रमिक प्रगति करने के लिए शिष्य को किस तरह ले जाया जाय। किसी को अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए छद्म गुरु नहीं बनना चाहिए, अपितु उसे कुशल गुरु होना चाहिए, जिससे वह शिष्य को आसन्न मृत्यु के चंगुल से उबार सके। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु के प्रामाणिक गुणों का बखान किया है और उन श्लोकों में से एक इस प्रकार है—

*श्रीविग्रहाराधननित्यनानाश्रृंगारतन्मन्दिरमार्जनादौ ।*

*युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥*

श्रीविग्रह, अर्चा अथवा भगवान् का उपयुक्त पूजनीय स्वरूप है और शिष्य को चाहिए कि वह श्रृंगार द्वारा अर्थात् समुचित अलंकरण तथा वस्त्रों द्वारा एवं मन्दिर-मार्जन अर्थात् मन्दिर की सफाई द्वारा श्रीविग्रह की पूजा करे। गुरु, नवदीक्षित भक्त को अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक स्वयं ही ये सारी बातें सिखाता है और धीरे-धीरे भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण आदि की अनुभूति प्राप्त करने में सहायता करता है।

भगवान् को वस्त्र पहनाने तथा मन्दिर को सजाने जैसी सेवा में ध्यान लगाने के साथ ही संगीतमय कीर्तन एवं शास्त्रों से आध्यात्मिक उपदेशों के द्वारा ही सामान्य व्यक्ति नारकीय सिनेमा के आकर्षण तथा सर्वत्र रेडियो द्वारा प्रसारित होनेवाले भद्दे कामुक गीतों से बच सकता है। यदि कोई घर में मन्दिर नहीं

बना सकता है, तो उसे किसी अन्य के मन्दिर में जाना चाहिए, जहाँ उपर्युक्त सारे कार्य नियमित रूप से सम्पन्न होते हों। भक्त के मन्दिर में जाने तथा भगवान् के अलंकृत रूप का दर्शन करने से संसारी मन में आध्यात्मिक प्रेरणा उत्पन्न होगी। मनुष्यों को चाहिए कि वे वृन्दावन जैसे तीर्थ-स्थानों में जायें, जहाँ ऐसे मन्दिर तथा श्रीविग्रह-पूजन की व्यवस्था रहती है। प्राचीनकाल में सारे धनी व्यक्ति, जैसा राजा तथा धनी व्यापारी, ऐसे मन्दिरों का निर्माण षड्गोस्वामियों जैसे कुशल भगवद्भक्तों के निर्देशानुसार कराते थे और जनसामान्य का कर्तव्य है कि इन मन्दिरों का तथा तीर्थस्थलों में सम्पन्न होनेवाले उत्सवों का लाभ महान् भक्तों के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए ( अनुव्रज ) उठायें। मनुष्यों को चाहिए कि इन पवित्र तीर्थस्थलों तथा मन्दिरों की यात्रा सैर-सपाटे करने की भावना से न करें, अपितु उन्हें भगवान् की दिव्य लीलाओं से अमर हुआ मानकर तथा ईश-विज्ञान जानने वाले व्यक्ति के मार्गदर्शन में करें। यह अनुव्रज कहलाता है। अनु का अर्थ है पीछे-पीछे जाना। अतएव उत्तम होगा कि मन्दिरों तथा तीर्थस्थानों को देखने जाने में भी गुरु के आदेश का पालन किया जाय। जो इस विधि से यात्रा नहीं करता, वह उस जड़ वृक्ष के सदृश है, जिसे भगवान् ने जड़ बने रहने का शाप दिया है। मनुष्य की चल-फिर सकने की प्रवृत्ति का दुरुपयोग दृश्य देखने या पर्यटन करने के लिए स्थानों की यात्रा करने में होता है। ऐसी यात्रा की प्रवृत्ति का सदुपयोग यही है कि महान् आचार्यों द्वारा संस्थापित तीर्थस्थलों में जाया जाय और उन धन कमानेवाले व्यक्तियों के नास्तिक प्रचार से गुमराह न हुआ जाय, जिन्हें आध्यात्मिक विषयों का कोई ज्ञान नहीं है।

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रि-रेणुं

न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।

श्री-विष्णु-पद्या मनुजस्तुलस्याः

श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

जीवन्—जीवित रहते हुए; शवः—मृत शरीर; भागवत-अङ्घ्रि-रेणुम्—शुद्ध-भक्त के चरणों की धूलि; न—कभी नहीं; जातु—किसी भी समय; मर्त्यः—मरणशील, मर्त्य; अभिलभेत—विशेष रूप से प्राप्त; यः—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; श्री—ऐश्वर्य से; विष्णु-पद्याः—विष्णु के चरणकमलों का; मनु-जः—मनु की संतान ( मनुष्य ); तुलस्याः—तुलसीदल; श्वसन्—श्वास लेते हुए; शवः—फिर भी शव; यः—जो; तु—लेकिन; न वेद—अनुभव नहीं किया; गन्धम्—सुगन्धि को।

जिस व्यक्ति ने कभी भी भगवान् के शुद्धभक्त की चरण-धूलि अपने मस्तक पर धारण नहीं



की, वह निश्चित रूप से शव है तथा जिस व्यक्ति ने भगवान् के चरणकमलों पर चढ़े तुलसीदलों की सुगन्धि का अनुभव नहीं किया, वह श्वास लेते हुए भी मृत शरीर के तुल्य है।

**तात्पर्य :** श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार, श्वास लेता शव प्रेत होता है। जब मनुष्य मरता है, तो वह मृत कहलाता है, किन्तु जब वह पुनः हमारी वर्तमान दृष्टि से अदृश्य, सूक्ष्म रूप में प्रकट होता है और कार्य करता है, तो ऐसा मृत शरीर प्रेत कहलाता है। प्रेत सदैव ही बुरे तत्त्व होते हैं, जो दूसरों के लिए भयानक स्थिति उत्पन्न करते हैं। इसी तरह प्रेत-सदृश अभक्त, जिन्हें न तो शुद्ध भक्तों के लिए, न मन्दिरों के विष्णु श्रीविग्रहों के लिए कोई सम्मान रहता है, वे भक्तों के लिए सदैव भयानक स्थिति उत्पन्न करते रहते हैं। भगवान् ऐसे अशुद्ध प्रेतों की कोई भेंट स्वीकार नहीं करते। एक आम कहावत है कि प्रेयसी के प्रति प्रेमभाव दिखाने के पूर्व मनुष्य को प्रेयसी के कुत्ते को प्यार करना होता है। शुद्धभक्ति की अवस्था भगवान् के शुद्ध भक्त की निष्ठापूर्वक सेवा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव भगवान् की भक्ति की पहली शर्त है शुद्ध भक्त का दास होना और इस शर्त की पूर्ति इस कथन से होती है “उस शुद्ध भक्त के चरणों की धूलि को धारण करना, जिसने दूसरे शुद्ध भक्त की सेवा की है।” यही शुद्ध शिष्य-परम्परा या भक्ति परम्परा है।

जब महाराज रहूगण ने परम सन्त जड़भरत से पूछा कि उन्होंने परमहंस की मुक्तावस्था कैसे प्राप्त की, तो उन्होंने निम्नानुसार उत्तर दिया ( भागवत ५.१२.१२ )।

*रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।*

*नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥*

“हे राजा रहूगण! महान् भक्तों के चरणकमलों की धूलि से सम्पूर्ण शरीर को पवित्र किए बिना भक्ति की पूर्णावस्था या जीवन की परमहंस अवस्था की प्रतीति नहीं हो सकती। यह तपस्या वैदिक पूजनविधि, संन्यास ग्रहण, गृहस्थ के कर्तव्य पालन, वैदिक स्तोत्रों के उच्चारण या गर्म धूप में अथवा जल के भीतर या तपती अग्नि के समक्ष तपस्या करने से कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती।”

दूसरे शब्दों में, भगवान् श्रीकृष्ण अपने शुद्ध मुक्त भक्तों की सम्पत्ति हैं, फलतः कृष्ण को केवल भक्त ही दूसरे भक्त को सौंप सकता है; कृष्ण कभी भी प्रत्यक्ष विधि से प्राप्त नहीं होते। अतएव

भगवान् चैतन्य ने स्वयं को गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदानुदासः “अर्थात् वृन्दावन में गोपबालाओं का पालन करनेवाले भगवान् के दासों का अत्यन्त आज्ञाकारी दास” कहा। शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् तक सीधे नहीं पहुँचता, अपितु वह भगवान् के दासों के दास को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है और इस तरह भगवान् प्रसन्न होते हैं। तभी भक्त भगवान् के चरणकमलों पर चढ़े तुलसीदलों का आस्वाद कर सकता है। ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि वैदिक साहित्य का महान् पंडित बनने से भगवान् नहीं मिलते, अपितु वे अपने शुद्ध भक्त के माध्यम से सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। वृन्दावन के सारे लोग भगवान् कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति, श्रीमती राधा रानी, से कृपा की प्रार्थना करते हैं, जो परम पूर्ण की सुकुमार हृदय अर्धाङ्गिनी हैं, जो संसार की स्त्रीरूपा प्रकृति की सिद्धावस्था के अनुरूप हैं। अतएव निष्ठावान् भक्तों को राधारानी की कृपा सरलता से प्राप्त हो जाती है और एक बार जब वे भगवान् कृष्ण से ऐसे भक्त का अनुमोदन करती हैं, तो भगवान् उसे तुरन्त ही अपना संगी बना लेते हैं। अतएव निष्कर्ष यही निकला कि मनुष्य को सीधे भगवान् की कृपा की खोज न करके, भक्त की कृपा प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा करने से (भक्त की कृपा से) भगवान् की सेवा करने का स्वाभाविक आकर्षण पुनः जागृत हो उठेगा।

तदश्म-सारं हृदयं बतेदं

यद् गृह्यमाणैर्हरि-नाम-धेयैः ।

न विक्रियेताथ यदा विकारो

नेत्रे जलं गात्र-रुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; अश्म-सारम्—फौलाद का बना; हृदयम्—हृदय; बत इदम्—निश्चय ही यह; यत्—जो; गृह्यमाणैः—उच्चारण करने पर भी; हरि-नाम—भगवान् का पवित्र नाम; धेयैः—मन की एकाग्रता से; न—नहीं; विक्रियेत—बदले; अथ—इस तरह; यदा—जब; विकारः—प्रतिक्रिया; नेत्रे—आँखों में; जलम्—अश्रु; गात्र-रुहेषु—छिद्रों पर; हर्षः—उल्लास का प्रस्फुटन।

निश्चय ही वह हृदय फौलाद का बना है, जो एकाग्र होकर भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करने पर भी नहीं बदलता; जब हर्ष होता है, तो आँखों में आँसू नहीं भर आते और शरीर के रोम-रोम खड़े नहीं हो जाते।

तात्पर्य : हमें ध्यान देना होगा कि द्वितीय स्कन्ध के प्रथम तीन अध्यायों में किस तरह भक्ति के क्रमिक विकास को प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम अध्याय में श्रवण तथा कीर्तन द्वारा ईश-चेतना के

लिए भक्ति के प्रथम चरण पर बल दिया गया है और नवदीक्षितों के लिए भगवान् के विश्व रूप में उनकी स्थूल अवधारणा की संस्तुति की गई है। ईश्वर की ऐसी स्थूल अवधारणा से, जो उनकी शक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति के माध्यम से प्राप्त होती है, मनुष्य का मन तथा इन्द्रियाँ आध्यात्मिक बनती हैं और धीरे-धीरे मन, उन भगवान् विष्णु पर एकाग्र होता है, जो प्रत्येक के हृदय में सर्वत्र और भौतिक ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में परमात्मा रूप में स्थित हैं। इसीलिए पञ्च *उपासना* पद्धति भी कार्य रूप में अपवाई जाती है, जिसमें पाँच मानसिक प्रवृत्तियों की संस्तुति की जाती है। ये हैं क्रमिक विकास, श्रेष्ठ की पूजा जो अग्नि, विद्युत्, सूर्य, जीव, शिवजी तथा अन्ततः निराकार परमात्मा जो भगवान् विष्णु की आंशिक अभिव्यक्ति के रूप में हो सकती है। इन सबका सुन्दर वर्णन द्वितीय अध्याय में हुआ है। किन्तु तृतीय अध्याय में विष्णु पूजा की स्थिति अर्थात् शुद्ध भक्ति प्राप्त करने के बाद विष्णु पूजा की परिपक्व अवस्था का वर्णन है, जिसमें हृदय परिवर्तन की बात कही गई है।

आध्यात्मिक संस्कृति की सम्पूर्ण प्रक्रिया का उद्देश्य जीव के हृदय में परिवर्तन लाना है, जिससे वह परमेश्वर के प्रति नित्य अपने आपको अधीन दास के रूप में माने, क्योंकि यही उसकी शाश्वत स्वाभाविक स्थिति है। इस तरह भक्ति की प्रगति के साथ-साथ हृदय-परिवर्तन का प्रदर्शन, संसार पर प्रभुता दिखाने की मिथ्या भावना से उत्पन्न भौतिक भोग की भावना की क्रमिक विरक्ति तथा भगवान् की प्रेमाभक्ति करने की प्रवृत्ति में वृद्धि के द्वारा होता है। यहाँ पर *विधि भक्ति* अर्थात् शरीर के अंगों द्वारा (आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव इत्यादि जिनका वर्णन पहले हो चुका है) की गई नियमित भक्ति पर शरीर के अंगों की समस्त गतिविधियों को प्रेरणा प्रदान करनेवाले मन के आधार पर बल दिया जा रहा है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि नियमित भक्ति-मय सेवा करने से हृदय में परिवर्तन अवश्य दिखना चाहिए। यदि परिवर्तन नहीं आता, तो समझना चाहिए कि हृदय फौलाद का बना है, क्योंकि भगवान् के पवित्र नाम के उच्चारण किये जाने पर भी यह नहीं पिघलता। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि भक्तिमय कार्यों को सम्पन्न करने में श्रवण तथा कीर्तन दो मूलभूत सिद्धान्त हैं और यदि इन्हें ठीक से सम्पन्न किया जाय, तो इससे हर्ष उत्पन्न होगा जो आँखों में आँसू तथा शरीर में रोमांच द्वारा लक्षित होगा। ये स्वाभाविक परिणाम हैं और *भाव दशा* के प्रारम्भिक लक्षण हैं, जो *प्रेम* या भगवत्प्रेम

की पूर्णावस्था प्राप्त होने के पूर्व प्रकट होते हैं।

यदि भगवान् के पवित्र नाम के निरन्तर श्रवण तथा कीर्तन से भी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो यह समझना चाहिए कि यह केवल अपराध के कारण है। यही *सन्दर्भ* का अभिमत है। भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण प्रारम्भ करते समय, यदि भक्त पवित्र नाम के चरणों पर दस प्रकार के अपराधों से बचने के प्रति सावधान नहीं रहता, तो यह निश्चित मानें कि विरह की भावना आँखों में आँसू तथा शरीर में रोमांच के रूप में नहीं प्रकट होगी।

भाव दशा का प्राकट्य आठ दिव्य लक्षणों से होता है। ये हैं—निष्क्रियता, प्रस्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्पन, शरीर का पीला पड़ना, अश्रुपात तथा अन्ततः समाधि। श्रील रूप गोस्वामी द्वारा विरचित *भक्ति रसामृत सिंधु* नामक कृति के सार रूप भक्तिरसामृत सिंधु में इन लक्षणों का तथा स्थायी एवं संचारी भावों का विशद वर्णन किया गया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कतिपय दुराचारी नवदीक्षितों द्वारा उपर्युक्त लक्षणों को सस्ती ख्याति के लिए अनुकरण करने के प्रसंग में इन सारे भावों की आलोचनात्मक व्याख्या की है। न केवल विश्वनाथ चक्रवर्ती ने, अपितु श्रील रूप गोस्वामी ने भी इनका आलोचनात्मक विवरण दिया है। कभी-कभी उपर्युक्त भाव के आठों लक्षणों का अनुकरण कतिपय संसारी भक्तों (प्राकृत सहजिया) द्वारा किया जाता है, किन्तु ऐसे छद्म लक्षणों का तब तुरन्त ही पता चलता है जब छद्म भक्त अनेक वर्जित कार्यों को करते पाया जाता है। कोई भक्त के चिह्नों से कितना ही अलंकृत क्यों न हो, यदि वह धूम्रपान, मद्यपान या स्त्रियों के साथ अवैध मैथुन करता है, तो उसमें उपर्युक्त भाव दशाएँ नहीं हो सकतीं। किन्तु ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी जानबूझ कर इन लक्षणों का अनुकरण किया जाता है, इसीलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने ऐसे अनुकरणकर्ता को पाषाण हृदय कहा है। कभी-कभी ऐसे लोग ऐसे दिव्य लक्षणों की झलक से प्रभावित भी होते हैं, किन्तु यदि इतने पर भी वे वर्जित आदतें नहीं छोड़ते, तो उनसे दिव्य अनुभूति की आशा नहीं की जानी चाहिए।

जब भगवान् चैतन्य गोदावरी के तट पर कावौर के श्री रामानन्द राय से मिले थे, तो उनमें ये समस्त लक्षण उत्पन्न हुए थे, किन्तु वहाँ पर राय के अनुयायी कतिपय अभक्त ब्राह्मणों के होने से

भगवान् चैतन्य ने इन लक्षणों को दबा लिया था। अतएव परिस्थितिवश कभी-कभी, ये लक्षण महाभागवत के शरीर में भी प्रकट नहीं हो पाते। अतएव असली स्थायी भाव भौतिक इच्छाओं के अन्त होने (क्षान्ति), प्रत्येक क्षण को प्रेमाभक्ति में लगाने (अव्यर्थ-कालत्वम्), निरन्तर भगवान् की महिमा के गायन के प्रति उत्सुकता (नाम गाने सदा रुचि), भगवान् के धाम में रहने के लिए आकर्षण (प्रीतिस्तद्वसति स्थले), भौतिक सुख से पूर्ण वैराग्य (विरक्ति), निरभिमानता (मानशून्यता) द्वारा प्रकट होते हैं। जिसमें ये समस्त दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं उसे ही असली भाव दशा प्राप्त होती है, पाषाण हृदय अनुकरणकर्ता या संसारी भक्त को नहीं।

सम्पूर्ण प्रक्रिया को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है—पूर्ण रूप से निरपराध होकर भगवान् के पवित्र नाम का जप करनेवाला तथा प्रत्येक व्यक्ति के प्रति मैत्री भाव रखनेवाला प्रगत भक्त ही वास्तव में भगवान् के यशोगान का दिव्य आस्वादन कर सकता है। ऐसी अनुभूति का परिणाम समस्त भौतिक इच्छाओं की समाप्ति द्वारा परिलक्षित होता है, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है। नवदीक्षित भक्त, भक्ति की निम्नतर अवस्था में रहने के कारण, ईर्ष्यालु होते हैं और अपने आचार्यों का अनुगमन न करके स्वयं भक्ति के विधि-विधानों का आविष्कार करते हैं। फलस्वरूप, वे कितना ही भगवन्नाम जप का प्रदर्शन क्यों न करें, वे पवित्र नाम का दिव्य स्वाद प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव आँखों में आँसू आना, काँपना, पसीजना या मूर्छित होना—इन सबकी भर्त्सना की जाती है। हाँ, वे भगवान् के शुद्ध भक्त की संगति करके, अपनी बुरी आदतों को सुधार सकते हैं, अन्यथा वे पाषाण-हृदय बने रहेंगे और किसी भी उपचार के योग्य नहीं हो सकेंगे। भगवद्धाम जाने के मार्ग की पूरी प्रगति, स्वरूप सिद्ध भक्त के द्वारा निर्देशित शास्त्रों के आदेशों पर निर्भर करती हैं।

अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं

प्रभाषसे भागवत-प्रधानः ।

यदाह वैयासकिरात्म-विद्या--

विशारदो नृपतिं साधु पृष्ठः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; अभिधेहि—कृपा करके बताएँ; अङ्ग—हे सूत गोस्वामी; मनः—मन; अनुकूलम्—हमारी मनोवृत्ति के उपयुक्त; प्रभाषसे—आप कहें; भागवत—परम भक्त; प्रधानः—प्रमुख; यत् आह—जो कुछ उसने कहा; वैद्यासकिः—शुकदेव गोस्वामी ने; आत्म-विद्या—दिव्य ज्ञान में; विशारदः—पटु; नृपतिम्—राजा से; साधु—अत्युत्तम; पृष्टः—पूछे जाने पर।

हे सूतगोस्वामी, आपके वचन हमारे मनों को भानेवाले हैं। अतएव कृपा करके आप हमें यह उसी तरह बतायें जिस तरह से दिव्य ज्ञान में अत्यन्त कुशल परम भक्त शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के पूछे जाने पर उनसे कहा।

तात्पर्य : जो विद्या शुकदेव गोस्वामी जैसे पूर्ववर्ती आचार्य द्वारा प्रदान की जाती है और फिर सूत गोस्वामी जैसे व्यक्ति द्वारा जिसका अनुकरण किया जाता है, वह सदा शक्तिशाली दिव्य विद्या होती है, इसीलिए वह अन्तर्ग्राही तथा समस्त विनीत जिज्ञासुओं के लिए लाभप्रद होती है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के अन्तर्गत “शुद्धभक्तिमय सेवा: हृदय-परिवर्तन” नामक तीसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।